

॥ अन्तिम-तीर्थकर ॥

अहिंसा-प्रवर्तक

सर्वज्ञ

भगवान् महावीर

॥ सक्षिप्त ॥



लेखक

गुलावचन्द्र वैद्यमुष्या

छिद्रवाडा

म प्र

प्रकाशक

श्री शिखरचन्द सिद्धराज वैद्यमुथा

गोलगज छिदवाडा म प्र

द्वितीय आवृत्ति-१०००

मुद्रक

त्रिवेदी स्रदस,

विजय प्रिंटिंग प्रेस

छिदवाडा, म प्र

निवेदन

भगवान महावीर का जीवनचरित्र लिखना कोई सरल काम नहीं है। इस विषयका जितना अध्ययन किया जाता है वह उतना ही गम्भीर और अव्यक्त प्रतीत होता जाता है। भगवान महावीरके जीवनकी सविस्तार घटनाएँ व उनके ज्ञानपूर्ण उपदेशोंकी चर्चाएँ बहुत ही आकर्षक और आत्मप्रबोधक भिन्नभिन्न सूत्र और शास्त्रोंमें उपलब्ध हैं, जिनमें कल्पसूत्र, आचाराग सूत्र आवश्यक सूत्र एवं दिगम्बर आमनाओंके त्रिलोक सारादि शास्त्र व भगवानके समकालीन बौद्ध शिलालेख मुख्य हैं। यद्यपि भगवान महावीरके जीवनकी ज्ञानयुक्त और युक्तिपूर्ण रचनाएँ विरलतासे पाई जाती हैं, पर वे ऐसी विचित्र, भावगर्भित, गहन और विवेकपूर्ण हैं कि उनपर एक-एक उपयोगी विशाल ग्रन्थ की स्वतन्त्र रचना हो सकती है। अगाध ज्ञान भण्डार एवं आत्मश्रयाणके अतिरिक्त लौकिक सत्कार-शान्ति स्थापक सामग्री यदि कहीं उपलब्ध है तो वह केवल भगवान महावीरके जीवनमें ही प्राप्त हो सकती है।

उदका विषय है कि हमारे बहुतसे भाई लोग अज्ञानतावश भगवान महावीरको श्रीराम भवन 'हनुमान जी' ही समझ बैठे हैं। यह एक भारी भूल है। भगवान महावीर, जिनका नाम 'वर्द्धमान स्वामी' भी है, अन्तिम अहिंसा प्रवक्तव्य चौबीसवे जैन तीर्थंकर हैं जो आजसे पच्चीस सौ वर्ष पूर्व इस भारतवर्षकी पवित्र भूमिपर अवतीर्ण हुए थे। इस पुस्तकमें उक्त शास्त्रोक्त आधार व मुनि महात्माओं एवं पण्डितोंके सम्पर्कसे जो कुछ प्राप्त हो सका वालीत्साहसे प्रेरित लेखकन अपनी क्षुद्र बुद्धिसे भगवानकी मुख्य मुख्य नीलाशोका सक्षिप्त तथा यथाशक्ति सरल एवं ग्राह्य वर्णन किया है। उस गहन विषयमें मतभेद, विरोध एवं भूलोक होना अनिर्णय है। अतः लेखक क्षमाप्रार्थी है और आशा करता है कि विराधका भूलकर, तथा भूलोको सुधारकर पठन करके पाठकगण इस पुस्तक द्वारा अपनी आत्माका स्तर भली भाँति ऊँचा उठावग।

इस सरल, शांतिदायक सक्षिप्त भगवान महावीरके जीवन चरित्र का भारतके घर-घरमें सदुपयोग हा यही अभिप्राय एवं शुभ कामना है।

छिन्दवाडा, म प्र
 ता १०-४-१९५१

गुलाबचन्द वैद्यमुथा

— प्राक्कथन —

लेखक— श्री अग्रचन्द नाहटा बीकानेर

जन धर्म में सर्वोच्च स्थात तीर्थन्तर का है। जन धर्म के नवन्तर महा मंत्र में पहले अरिहन्तो का उमके बाद सिद्धा को नमस्कार किया गया है। क्याकि सिद्धा का स्वरूप बताने वाले अरिहत्त ही हाते है, इसलिए उनका उपन्तर मन्त्रसे बडा है। वमे ता सिद्ध बुद्ध और भुक्त्त आत्मा की सर्वोच्च म्यिति है। पर सिद्ध के शरीर, इन्द्रियां आदि नही हानो इसलिए वे किसी का प्रत्यक्ष उपकार गही कर सकते, जबकि अरिहन्त - तीर्थन्तर अपना नम्यो आयुष्य मर्यादा में राखा कराहा व्यक्तियो को मोक्ष मार्ग प्रतनाते है। उनसे अनेको व्यक्ति प्रनित्रोध पाकर मोक्ष लाभ लेते हैं। साधु, साध्वी, थावर, थाविका रूप चतुर्विध मघ या तीर्थ की स्थापना करने के कारण ही अरिहत्तो का तीर्थन्तर कहा जाता है। वे अपने पूव जन्मों में गुणी व्यक्तियो की भक्ति और सेवा करते है। इसी के फलस्वरूप सम्यक् दर्शन प्राप्त करके आत्मोन्नति में आगे बढ़ने जाते हैं। तीर्थन्तर जन्म से पहले के पहले भव में वे बीस स्थानन्त यानी पांडप कारणा की आराधना करते ह और सब जीवों के कल्याण की कामना बडे तीव्र भाव से करते हैं। इसलिए तीर्थन्तर नामकरण और महान पुण्योदय का विशिष्ट उध हाना हे। जिसके पारणाम में तीसरे जन्म में वे तीर्थन्तर बनते हैं। उनमें एक विशिष्ट प्रकार की योग्यता रहती है। जिससे गर्भ द्वार जन्म से लेकर कई अतिशय प्रकट होत हैं। आगे चलकर

वे सयाम अर्थात् साधु धर्म की दीक्षा लेकर साधना करते हैं। फिर वे जगत् जान पाकर मयज्ञ विचरत हुए धर्मोपदेश देने रहने हैं। उनका वाणी में प्रभावित होकर हजारों व्यक्ति सब विरति धर्म और लाखों व्यक्ति देश विरति धर्म तथा मन्विक दशन को प्राप्त करते हुए आत्म कर्याण करते हैं। एमे महान उपकारी व्यक्ति का सर्वोच्च स्थान देना सर्वथा उपयुक्त ही है। उनके प्रवर्तित तीर्थों को आचार्य ममतमद्र ने सर्वोदय तीर्थ को संज्ञा दी है।

जैन मान्यता के अनुसार पाँच भारत ही पाँच आर्थात् क्षेत्र में उत्कल्प और अपकल्प काल जिस उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल कहा जाता है। दाना का मिलाकर काच चक्र कहा जाता है। प्रत्येक उत्कल्प और अपकल्प काल से तीसरे चौथे जारा में चौबीस तीर्थंकर जन्म लेते हैं। हम लोग जहाँ निवास करते हैं वहाँ दक्षिण भारत शय है। और वर्तमान काच अवसर्पिणी अर्थात् हासमान काल है। उनके तीसरे आरे के काल में प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव हुए, जिन्होंने वर्तमान भारतीय मन्विकता का सूत्रपात किया। उनके बड़ पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए। उन्हीं के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष या भारत क्षेत्र पडा। भगवान् ऋषभदेव ने अपनी पुत्रिया को लिपि और अक्षर अर्थात् लिखने और गणित का ज्ञान और चौमठ कलाये सिखलाई एक पुत्रों को ७० कलाय या विद्यायें सिखाईं असी, मसी और त्रिपि और ममी तरह के जीवनोपयोगी हुनर सिखाये। इसलिये ऋषभदेव आदिनाथ आदीश्वर कहलाए। भागवत पुराण में भी उनको अवतार मानते हुए जन धर्म का प्रवर्तक वर्तनाया गया है।

ऋगभदेव व वाग् अजितनाथ आदि २० तीर्थंकर और
 हुए उगरे बाद भगवान् अरिष्टनेमि २२ वे तीर्थंकर हुए जो
 पुराणात्तम धीरुष्ण व घनेरे भाई थे । महाभारत के युद्ध को
 इतिहास माना जाए ता भगवान् नमोनाथ का भी ऐतिहासिक
 पुराण मानना ही चाहिए । प्राचीन जागनों में महाभारत युद्ध
 का नाम इतिहास ही दिया गया है । भगवान् नमिनाथ की
 मयूरा आदि में कुछ ऐसा प्राचीन मूर्तियाँ मिली है । जिनके
 नाथ कृष्ण बरगम भी उल्लेखित है । इसलिए उनके घटित
 मयूरा की पुराता रज गांधी भी प्राप्त है । जैन जागमा के
 अनुसार धीरुष्ण भगवान् अरिष्टनेमि ने बटे ही भवा थे ।
 नमिनाथ का निवास निरार पर्व पर हुआ । नेमि राजपुत्र
 की माया ब्रह्म ही प्रतिष्ठ है । तर्जमे तीर्थंकर भगवान्
 पारश्वनाथ पुराणात्तम का ता सभी मिलत ऐतिहासिक
 महापुराण मान ही है । भगवान् महावीर के निवास में
 पारश्वनाथ का निवास केवल २५० वर्ष पूर्व ही हुआ था । भगवान्
 पारश्वनाथ के मायू माधवी और धारव धारिका भगवान्
 महावीर के समय में प्रसिद्ध थे । भगवान् महावीर व निरा
 और माया भी भगवान् पारश्वनाथ के ही अनुयायी थे । दि०
 दर्शनकर युद्ध के अनुसार तो महात्मा युद्ध व भी पारश्व
 परम्परा में ही पढ़ते दीक्षा ली थी । भगवान् पारश्वनाथ का
 निवास मम्भेन निगर पर हुआ था । २४ तीर्थंकरा में उनकी
 प्रतिष्ठा मयम उताता है । पारश्वनाथ के मन्त्रिण लक्ष मूर्तियाँ लक्ष
 मन्त्रात्तम आदि भी गयाधिक प्राप्त है । भगवान् पारश्वनाथ
 के कई मायू भगवान् महावीर की परम्परा में सम्मिलित हो
 गए थे । भगवान् पारश्वनाथ ने चतुर्मास धम का प्रकाश दिया

था। उनमें से चौथे वाम अर्थात् श्रम म सहायन या गृद्धि करके ब्रह्मरूप का अलग श्रम बतलाने हुए भगवान महावीर ने पंचमहाश्रम रूप धर्म का प्रचार किया था। उत्तगध्ययन मूत्र के केलि गीतम सम्पाद में पाण्डव व महावीर व धर्म का अन्तर स्पष्ट किया गया है।

अत्र से २५७२ वष पहले २४ व तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ जिनका मूत्र नाम बद्धमान था। १२ वर्षों तक महान कठिन साधना करके उन्होंने केवल ज्ञान और ध्यान द्वारा प्राप्त किया। फिर चतुर्विध संघ की स्थापना करके ३० वष तक धनक स्थाना म व्रम प्रचार करते हुए २१०० वष पहले गध्य पात्रा म निर्वाण का प्राप्त हुए। इसी उपलक्ष में अभी भारत भर म और विदेशा म भी उत्तरा २५०० वीं निर्वाण महात्मन मनाया जा रहा है।

अत्र से ३० वष पहले श्री गुलावचन्द उदमुथा ने अहिंसा प्रवर्तक सर्वत्र भगवान महावीर नाम का सन्धिप्त जीवन चरित्र प्रकाशित किया था। उसका अन्तिम ३ पृष्ठों म श्री 'महावीर स्तवन' नामक मेरी कविता भी प्रकाशित की थी। श्री गुलावचन्द्रजी जनधर्म व अच्छे जानकार और व्यवहार कुशल व्यक्ति थे। उन्होंने भगवान महावीर सम्बन्धी यह पुस्तक उस समय का देखत हुए बहुत अच्छे रूप में लिखी थी। कुछ महिने पहले मेरे पत्रानुसार उन्होंने इस ग्रन्थ की प्रति भेजते हुए पत्र दिया था। अभी २५०० वीं निर्वाण महात्मन के प्रसंग से मापण देने के लिए छिदवाडा जाना हुआ। तत्र उनके गुपुत्रों मे जात हुआ कि श्री गुलावचन्द्रजी का दर्शन हा गया है। और उनकी लिखी हुई 'अहिंसा प्रवर्तन' भगवान महावीर'

पुस्तक की वे द्वितीया वृत्ति छपवा रहे हैं। उनका अनुरोध था कि मैं इस पुस्तक का प्राक्कथन शीघ्र ही लिख भेजू। अतः इस वकनव्य के द्वारा उनके अनुरोध रक्षा का प्रयत्न कर रहा हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ का लेखक ने स्वयं ही सक्षिप्त व सरल चरित्र बताया है। उन्होंने अपने निवेदन में स्वयं ही लिखा है कि शास्त्रों के आधार और मुनि महात्माओं एवं पंडितों के सम्पर्क से जो कुछ प्राप्त हो सका बालोत्सव से प्रेरित लेखक ने अपनी शुद्ध बुद्धि से भगवान् की मुख्य-मुख्य लीलाओं का सक्षिप्त तथा यथा शक्ति सरल एवं ग्राह्य वर्णन किया है। लेखक की यह भावना रही है कि इस पुस्तक द्वारा पाठक अपनी आत्मा का स्तर ऊँचा उठावे। इस सरल शान्तिदायक सक्षिप्त महावीर के जीवन चरित्र का भारत के घर घर में सदुपयोग हो, लेखक की यह भावना बहुत प्रशस्त रही है। उनके मुपुत्र भी भगवान् महावीर निर्वाण के २५०० वें महीत्सर पर इस ग्रन्थ का प्रचार प्रयत्न कर रहे हैं। यह बहुत ही खुशी की बात है।

महापुरुषों का जीवन बहुत ही प्रेरणादायक होता है। उनसे मनुष्य को भागदशन मिलता है, आत्मात्मान की प्रेरणा मिलती है। इसलिए भगवान् महावीर के इस चरित्र का अधिकाधिक प्रचार अवश्य ही बड़ा लाभदायक सिद्ध होगा। इसमें भगवान् महावीर की जीवनी के साथ साथ चन्दनवाला, मेषकुमार, प्रसन्नचन्द्र राजपि, मत्याग्रहि मेठ सुदशन और अर्जुनमाली तथा ऐवतकुमार, घन्ना शालिभद्र, गीतम गणधर, कुम्भकार सहाल पुत्र, कौणिन और चेडा राजा युद्ध तथा गाशाला का भी प्रसंग वर्णित है। भगवान् महावीर की साधना काल का इसमें अच्छा विवरण दिया गया है। वास्तव में भगवान् महावीर जैसे साधक विश्व भर में खोजने पर नहीं

मिलेंगे । समय का, ध्यान और भी उतने माधव जीवन का मूल मन्त्र था । सम्भव की साधना ही भगवान महावीर का प्रधान लक्ष्य था । यीतरागता उता विनिष्ट गुण था ।

जैन धर्म के अहिंसा, अपरिग्रह और ओशान्त गिदालन विश्व के लिए बहुत ही उपयोगी है । भगवान महावीर एक क्रान्तिकारी आत्म दर्शी महापुरुष थे जिहाने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए धर्मोपदेश दिया था । उन उपदेशों का जीवन में अपनाते तो स्वयं और पर दाना का उरवाण होता है । अशान्त जीवन और विश्व में बड़ी शान्ति मिल सकती है । एद है जैन समाज ने भगवान महावीर का आदर्श चरित्र और उनके गिदालता का घर-घर में पहुँचाने का जैसा चाहिए वैसा प्रयत्न उही किया । इगोलिए गुलाबचन्दजी का अपा निवेदन में लिखता गडा कि खेर का विषय है कि हमारे बढुग से भाई लाग अपानलाचन भगवान महावीर को श्रीराम भक्त हनुमानजी ही समझ बैठे हैं । यह एक बड़ी भारी भूल है । मुझे भी इस बात का अनभव अभी अभी दा बार हुआ, जब महावीर का नाम लने ही, क्या व हनुमानजी ही है, ऐसा कहा गया । जन समाज का फलवर है कि २५०० वीं निर्वाण महात्मय के प्रगम से भगवान महावीर की जीवनी और उतर उपदेशों का विश्व भर में जन - जन में पहुँचाने का पूण प्रयत्न वने । मैं श्री गुलाबचन्दजी के सुपुत्रा की इस ग्रन्थ के पून प्रकाशन की भावना और प्रयत्न की सराहना करता हुआ जाने परिवार की धम-भावना दिनो दिन बढ़नी रहे, यही मंगल कामना करता हूँ ।

अगरचन्द साहूटा

बीकानेर (राजस्थान)

बीकानेर (राज)

दि २२ दिसबर १९७४

मिनी मिगमर मुदी ८ स २०३१

स्व पू गुलाबचन्दजी वंद्यमुथा
छिदवाडा (म प्र)
की स्मृति में



श्रीमति लाल कुवरबाई गुलाबचन्द वंद्यमुथा
श्रीमति शान्तिबाई शिखरचन्द वंद्यमुथा
श्रीमति प्रमिलाबाई सिद्धराज वंद्यमुथा
श्रीमति सायरबाई सुमनराज वंद्यमुथा
श्रीमति मुशीलाबाई सुभाषचन्द वंद्यमुथा
ने सदुपयोग हेतु छपवाया

कालचक्र



जैन विशेषज्ञों ने इस काल चक्र के दो विभाग किये हैं। एक का नाम उत्सर्पिणी काल और दूसरे का नाम अवसर्पिणी काल है। इन दोनों को मिलाने से कालचक्र होता है। ऐसे अनन्त कालचक्र पूर्व में हो चुके हैं और अनन्त ही भविष्य में होत चले जावेंगे। इसलिये काल का आदि और अन्त नहीं है ऐसा सबज्ञों का कथन है। जब उत्सर्पिणी काल अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है तब अवसर्पिणी काल का आरम्भ होता है। और

जब अवसर्पिणी काल अपनी अन्तिम सीमा तक चला जाता है तब उत्सर्पिणी काल का उदय होने लगता है। इस प्रकार जमन कालचक्र में उन्नति और अवन्नति हुआ करती है।

जैसा धर्म में प्रत्येक सर्पिणी के छे छे विभाग किये हैं। उत्सर्पिणी काल के छे भाग, जिन्हें 'आर' भी कहते हैं इस प्रकार हैं - (१) दुःखमा दुःखम् (२) दुःखम् (३) दुःखमा सुखम् (४) सुखमा दुःखम् (५) सुखम् और (६) सुखमा सुखम्।

इस काल का स्वभाव है कि यह दुःख की अवस्था में प्रवेश होकर जमन उन्नति करता हुआ सुख की चरम सीमा तक पहुँच कर शेष हो जाता है और पश्चात् अवसर्पिणी काल आरंभ होता है।

अवसर्पिणी काल के छे विभाग (आरे) इस प्रकार हैं -
 (१) सुखमा सुखम् (२) सुखम् (३) सुखमा दुःखम्
 (४) दुःखमा सुखम् (५) दुःखम् (६) दुःखमा दुःखम्।

इस काल का स्वभाव है कि यह सुख की अवस्था में प्रवेश होकर दुःख की चरम सीमा तक पहुँचकर न्यूनतम हो जाता है और बाद में उत्सर्पिणी काल लग जाता है। इस प्रकार यह कालचक्र घूमता रहता है।

जब शास्त्रनुसार उक्त दोनों कालों में चौथीम चौथीस तीर्थंकर, वाराह पराहृ चण्वर्ती, नी नी बलदेव, नी नी वामुदेव अर्थात् नारायण और नी नी प्रतिवामुदेव अर्थात् प्रतिनारायण होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक सर्पिणी काल में समय समय ६३ महान् पुद्गलों की उत्पत्ति होती है। इन्हें 'श्रेयस शिलाके पुद्गल

बहते हैं। इन महापुरुषोंके चरित्र-श्री हमचन्द्र सूरिकृति 'श्रेष्ठ शालाका पुरुष चरित्र' में हैं।

भगवान महावीर जिस सपिणी काल में उत्पन्न हुए हैं वह अवसपिणी काल बहा जाता है। इस अवसपिणी काल में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव जी हुए। उनके बाद २३ तीर्थंकर और हुए हैं जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं (२) अजीतनाथजी (३) श्रीमभवनाथजी (४) श्री अभिनन्दनजी (५) श्री मुमतिनाथजी (६) पद्मप्रभुजी (७) श्री मुपाश्वनाथजी (८) श्री चन्द्रप्रभुजी (९) श्री सुविधिनाथजी (१०) श्री शीतलनाथजी (११) श्री श्रेयासनाथजी (१२) श्री वागुपूज्यजी (१३) श्री विमलनाथजी (१४) श्री अततनाथजी (१५) श्री धमनाथजी (१६) श्री शान्तिनाथजी (१७) श्री कुण्डनाथजी (१८) श्री अमरनाथजी (१९) श्री महिनाथजी (२०) श्री मुनिमुव्रतनाथजी (२१) श्री नमिनाथजी (२२) श्री नेमिनाथजी (२३) श्री पाश्वनाथजी और (२४) श्री महावीर स्वामी ॥

इस प्रकार तीर्थंकरों की क्रमावली पूरा होने हुए काल निर्माण का इतना समय बीत चुका है कि जिसकी गणना प्रत्येक तीर्थंकर की आयुष्य और उनके मध्यकालीन रूपों की गिनती लगाने से ही प्रतीत हो सकती है। य गणना जैन शास्त्रों में इतनी बताई गई है कि जिसे सख्यामें ता लिख सकते हैं परन्तु उस सख्या को पढ़ नहीं सकते। इसका कारण यह है कि आधुनिक समय में उतनी सख्या पढ़ने के लिये शब्द ही निर्माण नहीं हुए। इसीसे जैन धर्म की प्राचीनता का पता चलता है कि यह ब्रह्म पुराणा मनाते धर्म है।

ॐ प्राचीनता ॐ



जैन धर्म भारत का प्राचीन धर्म है जो अनादि काल से अविच्छिन्न चला जा रहा है। यह एक स्वतंत्र सवज्ञ भाषित धर्म होने के कारण इसके सिद्धान्त बहुत ही उच्च कोटि के हैं। इस धर्म की पवित्र छत्रछाया में किसी भी प्राणी की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं हो सकता। प्राणीमात्र का इच्छितवस्तु इसी धर्म से प्राप्त हो सकती है और वह है 'जीना' अर्थात् अपना अपना जीवन। इस धर्म के आश्रय में प्राणीमात्र स्वच्छन्द और निभयता

से विचर सकते हैं। विश्वशांति के लिये इसी धर्म ने अहिंसा एवं दया का सुन्दर पाठ मनुष्य को पढ़ाया है। इस धर्म की अहिंसा में ही मानव सभ्यता, विश्वव्यापी सुख और अपूर्व शान्ति की निमल धारा बहती है। प्राचीन से प्राचीन ऋषियों के सिद्धान्तों में इस धर्म की छटाआवा म्यान म्यान में उल्लेख पाया जाता है। इसीसे प्रतीत होता है कि यह धर्म बहुत ही प्राचीन और विश्वव्यापी धर्म है। इसी प्राचीनता के विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनमें से कुछएकका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ किया जाता है।

१ राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने अपने 'भूगोल हस्ता-मलक' में लिखा है कि अठ्ठाई हजार वर्ष पहिले दुनिया का अधिक भाग जैन धर्म का उपासक था।

२ ऐतिहासिक प्रमाणों में भी सिद्ध होता है कि वेदकाल के पूर्व भी जैन धर्म का अस्तित्व था। इसीलिये वेदों की ऋचाओं में जनिया के तीर्थकरों के नाम आते हैं, जैसे -

(१) यजुर्वेद (अध्याय २६) 'ॐ रक्षा रक्षा अरिष्ट नेमि स्वाहो' अर्थात्, हे अरिष्ट नेमि भगवान् हमारी रक्षा करो ॥ (नेमि नाथ जिन्हें अरिष्ट नेमी भी कहते हैं जैनिया के २२ वे तीर्थकर हैं)।

(२) यजुर्वेद (अध्याय २६) 'ॐ नमोऽहन्तो ऋषभा'। अर्थात् अहतनामधारी ऋषभदेव को नमस्कार हो। ऋषभदेव जी जैनिया के प्रथम तीर्थकर हैं जिन्हें आदिनाथजी भी कहते हैं और अहन्त श्री स्वका-उमग का पहला पद है।

३ ऋग्वेद—‘ॐ त्रैलोक्य पतिष्ठताना चतुर्विंशति तीर्थकराणा ।
ऋषमादि वद्धमानाताना सिद्धाना शरण प्रपद्ये ॥’

अथ—तीन लोक में प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेव से लेकर श्री वद्धमान स्वामी तक चौबीस तीर्थकर हैं उन मिद्धो की शरण प्राप्त होता है ।

४ ऋग्वेद—‘ॐ नमन सुगीर दिग् वामस ब्रह्मगर्भ मनातन
उपमि वीर पुरूपमर्हतादित्य वणं तमस पुरस्तात्
स्वाहा ’ ।

अथ—नमन धीर वीर दिगम्बर ब्रह्मस्वरूप मनातन अर्हत आदित्य वण पुरूप की शरण प्राप्त होता है ।

ऋग्वेद—अ० २ सू ३३ वग १०—‘अहन विमपि सायकाति
घन्वहभिष्क यजत विश्वरूपम् अर्हन्नद दयसे
विश्वमम्ब न वा ओ जी—यो रुद्रत्वहस्ति ।

भावार्थ—हे अहन वस्तु स्वरूप घर्मरूपी वाणी को, उपदेश रूपी घनुषको तथा आत्मचतुष्टय रूप (अनन्त ज्ञान, अनन्त दशन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख) आभूषणा को घाग्ण किये हो । हे अर्जुन आप ससार के सब प्राणियों पर दया करते हो और कामादि को जलाने वाले हो, आपके समान कोई रुद्र नहीं है ।

ऋग्वेद—मडल १ सू ९४ मडल ५ सू -५२-५ में श्री ऋषभ-
देव की इस प्रकार स्तुति की गई है —

ऋषभमा सभासाना, सपत्नाना विपासहितम्, हतार
शत्रूणा कृधि-विराज गोपितगवाम् ॥'

यजुर्वेद-अ ६ मंत्र २५ में कहा है -

स्वास्ति न इन्द्रा बद्ध थवा स्वास्ति न पूषा विश्ववेदा
स्वस्ति न स्तात्या जरिष्ठनेमी स्वस्ति नो
बृहस्पतिदधातु ।'

इस मंत्र में इन्द्र, पूषा जिन तीर्थंकर अग्निष्ठ नेमि जीर
बृहस्पति से मंगल कामना की गई है इत्यादि ।

५-महाभारत -

युगे युगे महापुण्य दृश्य ते द्वारिकापुरी
अवतीर्ण हरियत्र प्रभास शशि भूषण ।
रेवताद्रौ जिना नेमिर्युगादि विमलाचले
ऋषीणानाश्रमा देव मुक्ति मार्गस्य कारणम् ॥

अर्थ-युग युग में द्वारिकापुरी महाक्षेत्र है जिसमें हरि का
अवतार हुआ, जो प्रभास क्षेत्र में चन्द्रमा की तरह
शोभित है, गिरनार पर्वत पर (रेवताद्रौ) नेमिनाथ
जीर सिद्धाचल अथात् विमलाचल पर्वत पर आदि-
नाथ याने ऋषभ देवजी सिद्ध हुए हैं । यह क्षेत्र
ऋषिया के आश्रम हान से मुक्ति मागने का
कारण है ।

५

नोट-इसमें मालूम होता है कि महाभारत के पूर्व भी
जैन धर्म की मान्यता थी और उनसे रेवतादि

अर्थात् गिरनार और विमलाचलादि अर्थात् सिद्धा-
चल शत्रुजय पर्वत तीर्थ भी मौजूद थे ।

६—योग वसिष्ठ प्रथम वैराग्य प्रकरणमें राम कहते हैं—
नाह रामा न मेवाञ्छा, भावेषु च न मे मन ।
शान्तिमास्थातुमिच्छामि चात्मैव जिनोयथा ॥

अर्थात्—भगवान रामचन्द्रजी कहते हैं कि 'न मैं राम हूँ,
न मेरी कुछ इच्छा है और न मेरा मन पदार्थों में
है, मैं केवल यही चाहता हूँ कि निनेश्वर देव की
तरह मेरी आत्मा में शान्ति हो ।

७—मनुस्मृति—

कुलादिवोज सर्वेषां प्रथमो विमल वाहन ।
चक्षुष्मानश्च यशस्वी वाभिचद्रा य प्रसेनजित ॥
महर्षेर्विच नाभिश्च भरते कुल सत्तम ।
अष्टमो महर्षेर्व्या तु नाभेजाति उह ऋम ॥
दशमं वरुण वीराणां सुरासुर नमस्कृत ।
नीति त्रितय कर्ता यो युगादौ प्रथमोजित ॥

भावार्थ—सब कुला का आदिकरण पहला विमल वाहन
नाम और चक्षुष्मान नाम वाला, यशस्वी अभिचद्र
और प्रसेनजित महर्षी और नाभिनाम वाला,
कुलमें वीरोंके भागकी दिखलाता हुआ, देवता और
दैत्यो से नमस्कार पानवाना, और युगके आदिमें
हकार, मकार, धिक्कार ये तीनों प्रकार की नीतिवा
रचनेवाला प्रथम जिन भगवान हुआ ।

नोट— विमलावाह्यादिको जैन शास्त्रोंमें बुलकर कहा गया है। महा महायुगके आदिमें जो अवतार हुआ है उसे जिन अर्थात् जैन धर्मका आदि देव लिखा है। इसके अतिरिक्त मोहेनजदारोसे प्राप्त कमसे कम ५००० पांच हजार वर्ष पूर्व की सीला और मिक्कोमें पुरातत्ववेत्ता डा० प्राणनाथ विद्यालवार के कथानानुसार 'नमो जिनेश्वराय' लिखा मिलता है। इससे भी विदित होता है कि युगवे आदिमें जैन धर्म विद्यमान था। इसलिये सब धर्मोंमें जैन धर्मही प्राचीन धर्म प्रतीत होता है।



जैन धर्म पर जगत् प्रसिद्ध सम्मतियां



१ पंडित राजेन्द्रनाथ (राम प्रपन्नाचार्य) ने अपनी 'भारत मत दर्पण' नामकी पुस्तक के पृष्ठ १० पक्ती ६ से १५ में लिखा है कि पूज्यपादबाबू कृष्णनाथ बनरजी ने अपनी 'जैनिज्यम्' नामकी पुस्तकमें बताया है कि भारतमें पहले चालीस करोड़ जैन थे । उसी मतसे निकलकर बहुत लोगोंके अर्थ धर्ममें चले जानेसे उनकी संख्या घट गई । यह जैन धर्म बहुत प्राचीन है । इसके नियम बहुत ही उच्च और उत्तम हैं । इस धर्मसे देशको भारी लाभ पहुंचा है ।

नोट- उक्त बचनमें जैनाकी सख्या बहुत ही बड़ी हुई मालूम हाती है। परंतु संभव है कि इतनी बड़ी सख्या भगवान् ऋषभ देवजी से लेकर किसी भी तीर्थंकर के मध्याह्नकालमें इस भूमंडल पर रही हो, क्योंकि जनियों के प्राचीन से प्राचीन मूल ग्रन्थाम इस धर्म के सिवाय अन्य किसी का धर्म उल्लेख ही नहीं पाया जाता, जैसा कि पहले बताया है अन्य धर्मोंमें जैन तीर्थंकरा का उल्लेख मिलता है। इसीसे इस धर्म की विशालता और प्राचीनता सिद्ध होती है।

२ महामहोपाध्य १० गगनाय भा एम० ए०, डी० एल० एल० इलाहाबाद- 'जबसे मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन सिद्धान्त का खडन पडा तब से मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धान्त में बहुत कुछ रहस्य भरा हुआ है जिसको वेदान्त के आचार्य ने बिलकुल नहीं समझा। जो कुछ अब तक मैं जैन धर्म को जान सका है उसमें मेरा यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि यदि वे (शंकराचार्य) जैन धर्म को और उसके असल ग्रन्थों को देखने का कष्ट उठाते तो उन्हें जैन धर्म से विरोध करने की कोई बात ही न मिलती'।

३ महामहोपाध्य डाक्टर सतीशचंद्र विद्याभूषण एम ए, पी० एच० डी०, एफ० आई० आर० एस० सिद्धान्त महाविधि प्रिंसिपाल ससृष्ट कालेज-बलकता

आप अपने २७ दिसम्बर सन् १९१३ के काशीमें दिये व्याख्यान में प्रस्तुत करने हैं कि -

(1) ' जैन धर्म की प्राचीनता का अनुमान लगाना बहुत ही कठिन है । परन्तु उस धर्म के साहित्यने न केवल धार्मिक विभागमें किन्तु आत्माशक्ति के अन्य विभागों में भी प्राच्यजनक उन्नति प्राप्त की है । 'याय और आध्यात्म विद्याके विभागमें ता इस साहित्यने ऊँचेसे ऊँचे विकास और क्रमको धारण किया है ।

(11) एक गृहस्थ का जीवन जो जैनत्वको लिये हुए है इतना अधिक निर्दोष है कि भारतवर्ष को उसका अभिमान होना चाहिये ।

(111) ऐतिहासिक सप्ताहमें यदि भारतदेश सप्ताह भरमें अपनी आध्यात्मिक और दार्शनिक उन्नतिके लिये अद्वितीय है तो इससे किसीको भी इन्कार न होगा कि इसमें जैनियोंको ब्राह्मणा और बौद्धों की अपेक्षा अधिक गौरव प्राप्त है ।

४ ५० स्वामीराम मिश्रजी शास्त्री, भूतपूर्व प्राफेसर मसूत कालेज-बनारस

काशी ६ फोप शुबल (सवत् १९६२ के व्याख्यान में आप दशति हैं कि -

(1) ब्रह्मिकमत और जैनमत सृष्टि की आदि से बराबर अविच्छिन्न चले आये हैं । इन दोनों मतोंके सिद्धांत एक दूसरे से विशेष धनिष्ट संबन्ध रखते हैं । अर्थात् सत्त्वायवाद, सत्कारणवाद, परब्रह्मस्त्व, आत्माकानिर्विकारत्व मोक्ष का होना और

उसका नित्यत्व, जन्मान्तर के पुण्य पापसे जन्मान्तर में फल भोग-वृत्तोपनासादि व्यवस्था, प्रायश्चित्त व्यवस्था, महाजनपूजन, शब्द प्रमाण्य इत्यादि समान हैं ।

(II) आप कहते हैं—‘ सज्जनो इमं धर्मं में जान, वैराग्य, शान्ति, क्षान्ति, अदम्भ, अनीर्षा, अत्राध, अमत्तमय, अलोलुपता, शम, दम, अहिंसा और समदृष्टता इत्यादि गुणा में एक एक ऐसा है कि वह जहा पाया जाय वहा पर बुद्धिमान लोग उसकी पूजा करने लगते हैं । तबतो जैनोमें पूर्वोक्त सब गुण निरतिशयसोभ हाकर विराजमान हैं । यह कामरो का धर्म नहीं है । एक दिन वह था कि जनाचार्यों की हुकार से दशो दिशाए गूज उठती थी । परंतु काल चक्र ने जैनमतके महत्त्वका ढाक दिया है इसीलिसे उसके महत्त्वका जानने वालेभी अब नहीं रह ।

(III) सज्जना ! आप जानते हैं कि मैं वैष्णव साम्प्रदायक बहुर आचार्य हू तोभी भरी मत्ता में सत्यके कारण मुझे यह कहना आवश्यक हुआ है कि जनोका ग्रंथ—सामुदाय सारस्वत महासागर है । उनकी ग्रंथ सख्या इतनी अधिक है कि उसकी यदि सूची बनाई जाये तो एक विजाल ग्रंथ बन जायगा । इनके ग्रंथ बहुत गभीर, युक्ति-पूण, भाव-पूरित विशद और अगाध ह । यह बात वे ही जान सकते हैं जिन्हाने मेरे समान किञ्चित्तमात्र इनका मनन किया हो ।

(IV) सज्जना ! जैनमत तबसे प्रचलित हुआ है जबसे मसार सृष्टिका आरम्भ हुआ । मुझेनो इस प्रकार कहनेमें भी सदेह नहीं होता कि जैन दशन वेदान्तादि दशनो से भी पूव । है ।’ इत्यादि

भारत शिरामणी त्रिवेदीय व वालगमाधर तिलक

आपके ३० नवम्बर सन् १९०४ के बडोदा में दिये हुए
व्याख्यानसे अवलोक प्रेस, मुलतान से प्रकाशित —

१ जैनधर्म और ब्राह्मण धर्म दोनों ही प्राचीन धर्म हैं।

२ जैन धर्म अनादि है यह विषय जब निर्विवाद हो
चुका हो और इस विषय में इतिहास के दृढ़ प्रमाण हैं।

३ अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीका शक चलते चौबीस
सौ वर्ष से अधिक हो चुके। शक चलाने की कल्पना जिनिया ने
ही उठाई थी। इनसे भी जैन धर्म की प्राचीनता सिद्ध हानी है।

४ 'अहिंसा परमो धर्म' इस उदार सिद्धांतने ब्राम्हण
धर्म पर चिरस्मरणीय छाप मारी है। पूर्व कालमें यज्ञके लिये
असंख्य पशु हिंसा होनी थी, परन्तु इस धार हिंसाका ब्राम्हण
धर्म से विदाई ले जाने का अर्थ जनधर्म होके टिस्तेमें है।

५ जैनधर्म और ब्राम्हण धर्म का बाद में कितना निम्न
संबंध हुआ है ज्योतिषशास्त्री भास्कराचार्य के ग्रन्थसे विशेष
उपलब्ध होना है। उक्त आचार्यने ता जैनधर्मके रत्नत्रय अर्थात्-
दर्शन, ज्ञान और चरित्रको ही धर्मका मूल तत्व बतलाया है।

साहित्य रत्न-डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर

पच्चीस वर्ष पूर्व एक सभामें धर्म विषय पर कथन करते हुए
आप दशाते हैं कि 'महावीर (जैनिया के चौबीसवे तीर्थंकर)
ने ऐसा सदश फेंगाया कि धर्म यह मात्र सामाजिक
ऋद्धि नहीं है परन्तु वास्तविक सत्य है। मोक्ष यह बाहरी

क्रियाकांड पालनेसे नहीं मिलता परन्तु सत्य धर्म स्वरूपम जात्रम लेने से मिलता है । धर्म और मनुष्यमें कोई स्थायी भेद नहीं । कहते आश्चर्य होता है कि इस शिक्षाने समाज के हृदयम जडकर बेठी हुई दुर्भावनाओं का तरा से भेद दिया और सम्पूर्ण देश का पुन धर्म मार्ग पर अग्रसर करके वशीभूत कर लिया । जैनधर्म में अहिंसा की उत्तम शिक्षा और स्वतंत्र विचार पद्धति धार्मिक क्षेत्रम अपना विशेष स्थान रखती है ' इत्यादि ।

मैक्समूलर -

जैनधर्म हिन्दूधर्मसे सर्वथा स्वतंत्र है । वह उसकी शाखा या रूपांतर नहीं है क्योंकि प्राचीन भारतमें किसी धर्मसे कुछ तत्त्व प्रथक लेकर नूतन धर्म प्रचार करने की प्रथाही नहीं थी । यह धर्म विलकुल स्वतंत्रतापूर्वक जादि कालसे प्रचलित है ' ।

जमन चन्द्र जैकावी -

जैन फिलासफाम बहुतसी आश्चर्यजनक बात है जिसका बज्ञानिक लोगों को पता तक नहीं है मने अपने देश में कुछ योगाका ध्यान इन आर आकर्षित किया है । आज चालीस वर्षोंमें म इस फिलासफाका अध्ययन कर रहा है ।

मरम्बती १२ मार्च सन १९१३ से उद्धृत

कनडियन मिशिन कालज इन्डोर क इतिहासवत्ता प्रोफेसर जोहरी मिशिनरी -

ईस्वी सन् १६१७-१८ म लखनऊ जब उक्त कालेज की १० ए० क्लाम में पढ़ता था तब उसे उक्त प्राफेसर साहब से

वातचीन करने का कई बार मौका मिला। उक्त प्रोफेसर गाहव का बयान था कि -

' न गच्छेञ्जिन मन्दिरम् ' इस वाक्य ने सत्कार को सुख और शान्ति पहुंचाने वाले जैनियों क अमूल्य रत्न भंडार ग्रंथोका अज्ञानकी चार दीवारोके अंदर बंद कर दिया। यदि जैन धर्मके सिद्धान्तो का प्रचार दुनिया भरमें होता तो सत्कार के किसीभी भागमें पाशविक अत्याचार और रक्तकी नदिया न बहती जैसाकि आजकल हम यूरोपियन छडम सुन रह हैं। यह धम उत्तम आदर्शो को लेकरही अनादिकालसे सत्कारकी सेवा करता घला आरहा है। यह धम बबरो प्रचलित हुआ गह तो इतिहास भी नहीं बतल सक्ता, परन्तु यह अवश्य कहना पडता है कि इस धमके अनेक उच्च सिद्धान्तोमें से अहिंसाका सुन्दर सिद्धान्त मनन करने योग्य है। "

श्री महावीर जयन्त्युत्सव समारोह नागपुर - ता० ३०-३-१९४२ अध्यक्ष-नागपुर हायकोट के माननीय जस्टिस नियोगीने अपने भाषण में कहाकि 'जैन धर्म मार्टिनल्यूथर के प्रोटेस्टंट धमके अनुसार उठ पडा हुआ। वेद और महाभारत में जैन धमका उल्लेख है। जैनोकी सख्याकी यूनता कोई महत्व नहीं रखती है, जब तण एकभी जैन जीवित रहगा, जन धम चकेगा। जनधम पूणतया प्रजातंत्रवादि धम है, जिसमें स्वतंत्रता एकता, प्रेम और सहृदयता का आधिपत्य है। जनधमम तीन अमूल्य बातें हैं-भक्ति, काम और ज्ञान जिमसे श्वकिर्तन मुक्ति प्राप्त हानी है।'

' दैनिक-नवभारत ' नागपुर ता० ३ अप्रैल १९४१

' नाकमन ' नागपुर ता० ७ अप्रैल १९४२

इस प्रकार इस धर्मकी प्राचीनता, स्वतन्त्रता और उत्तम भावनाओंके अनेक प्रमाण इतिहासमें विद्यमान हैं। यह धर्म वैज्ञानिक और स्वतन्त्र धर्म हान के कारण सुदृढ़ और सर्वप्राही है। प्रचारकों की कमी और सकीणताके कारण इस धर्मका प्रकाश जैसा होना चाहिये था वैसा नहीं हो रहा है। इस धर्ममें वीतराग भाव होन के कारण यह न्यायपूर्ण और निष्पक्ष धर्म प्रतीत होता है। इस धर्ममें विशेषकर गुणही पूजा जाता है। जगतो इस धर्मके प्रसिद्ध जनाचार्य श्रीमद् भट्टाकलक देवने नीचे के श्लोक में कैसे मनोहर और निष्पक्ष भावासे परमात्मा को नमस्कार किया है—

यो विश्व वेद वेद्य जननजलनिधेर्मंडिगन पारदशवा ।
 पूर्णायवाविरुद्ध वचनमनुपम निष्कलक यदीयम् ॥
 त वदे साधुवद्य सकलगुणनिधि ध्वस्त दोषद्विपतम् ।
 बुद्ध वा बद्धमान शतदलनिलय केशव वा शिव वा ॥

भावार्थ—जानने योग्य सम्पूर्ण विश्वको जिसने जान लिया, सत्कार रूपी महासागरकी तरंगे दूसरी पारतक जिसने देखली, जिसके वचन परस्पर अविरोद्ध, अनुपम और निर्दोष हैं, जो सम्पूर्ण गुणों का भंडार और साधुओं द्वारा वन्दनीय है, जिसने राग द्वेषादि अठारह शत्रुरूपी दासोंको नष्ट कर दिया है, और जिसकी शरणमें सैकड़ा लोग आते हैं ऐसा कोई पुरुष विशय या महान आत्मा है उसे मेरा नमस्कार हो, फिर चाहे वह शिव हा, ब्रह्मा हो, विष्णु हा, बुद्ध हो अथवा बद्धमान (महावीर) हो।

भगवान महावीर के पहिले



यह तो हम पूर्व ही बता चुके हैं कि यह अवसपिणी काल है जिसमें चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। उनमें से भगवान महावीरका स्थान अन्तिम तीर्थंकरका है। इनके ढाई सौ वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ स्वामी, तबीसवें तीर्थंकर हुए थे। वस इन्हीके बादका काल भारतके इतिहासमें कालिमासे पुता हुआ है।

भगवान पार्श्वनाथ स्वामी के मोक्ष जाने तक भारत वष में जैन धर्मका भारी उद्योत था। इन्ही समय म वड २ ब्राम्हण इस-धर्म के धुरधर पडित थे। वडे २ राजा और महाराजा लोगभी

इसी घमका पालन करते थे । पर्वल टाड राहेरने अपने राज-स्थानीय इतिहासमें लिखा है कि भागतचपम एक समय ऐगा था कि सारे देश में जैन राजा राज्य करते थे और उम समय उनके राज्यों में पूण शांति थी । मभव है कि पीछ बतलार्न हई जैन सय्या इमी समय में इतने विशाल रूपमें रही हो ।

आगे चलकर टाड गाहन पुन लिखते है कि जन मोग हिमालय से लेकर कया कुमारी तक और उमसे भी आगे लका द्वीप तक और कराचीसे लेकर बगाल, ब्रम्हदेश, स्याम और जवादि देशा तक फैले हुए थे । अनेक देशाका व्यापार भी इन्ही लोगोंके अधीन था । प्रत्येक प्रान्तमें उमी समयके बड़े २ जैन कार्यालय, दिनास जैन मन्दिर और अनेक आश्रमादि तोकापयागी सस्थाएँ इतिहास प्रसिद्ध हैं । अनेक स्थानोंमें आजतक भी उनके पुरातन तीर्थस्थान मौजूद हैं जिनकी शिल्पकारी देगवर उनकी उन्नति और प्राचीन सभ्यता का अनुमान आतानी में हो सकता है ।

भगवान पाशवनाथ स्वामी के स्वरूपकाल पञ्चातरी भारत वर्षमें घामिक श्रृंखला टूट चुकी थी और अधमें का राज्य फैलने लगा था । ब्राम्हण लोग अपने ब्राम्हणत्व की भूतकर स्वार्य के बशीभूत हो अपनी सत्ता या दुरुपयोग करने लग थे । क्षत्रीलाल भी ब्राम्हणाके हाथ की बठपुनरी बनकर अपन बसोंब्यामि विमुछ होगये थे । समाजमें बहुत ही विमाल विश्रृंखला उत्पन्न होने लगी थी । समाज और प्रबध अत्याचारिया के हाथम जा पडा था । सत्ता उमाद और अदरारकी शिकार बन चुकी थी । राजमुकुट अधमें के शिरपर मडित था । समाजभर में त्राहि त्राहि मच गई

थी। भारत वर्षके धार्मिक और सामाजिक इतिहास में यह काल बड़ाही भीषण था। समाजके अन्तर्गत अत्याचारोन्नी अग्नि घषक रहीथी। धर्म के नामपर स्वार्थका राज्य सवार था। धर्म और सामाजिकी ऐसी दुर्दशा हो चुकी थी कि वे क्षीण क्षीण होकर कई टुकड़ोंमें विभाजित हो चुके थे। जिघर देखो उघरही अघर्म, पाप और हिंसा ही हिंसा दृष्टिगोचर हा रही थी। ऐसी भीभत्स भयकरता के कारण समाज की उन्नतिके स्थानपर महान अवन्नति दिखाई दे रही थी। पशुवध और उग्रहिंसामय यज्ञकर्म तो भारत-याप्त होगया था। कहीं अश्वमेधयन (जहा सहस्रों घोड़ें अग्निमें होम दिये जाते थे), कहीं गामेधयज्ञ (जहा गौए जलादी जाती थी), कहीं अजमेधयज्ञ (जहा बकरो की बली दी जाती थी), और कहीं कहीं तो नरमेधयज्ञ (जहा मनुष्यों तक का भयकर अग्निज्वालाम भूज दिया जाता था) भारतवर्ष भरमें नित प्रति हाने लगे थे। निरपराधो असंख्य प्राणियोंके रघिर से पृथ्वी मिचित हो रही थी। सर्वत्र हाहाकार मच रहा था। ऐसी भयकर भीभत्स अवस्था में मारी सृष्टि एक ऐसे महान् आत्मा की राह देख रही थी जो इन मूक प्राणियों को नितप्रतिके दारुण दुखो से मुक्त कर अभीत करे।

इन प्राणियों की अभिलाभा पूर्ण हुई। भगवान महावीर ने जन्म धारण किया और उक्त सब भयकर दशाको अपनी बुलद आवाज द्वारा शांतकर धार्मिक और सामाजिक सुधारके साथ भारतवर्षमें पुन शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया। अहिंसा अर्थात् अभयदानका पाठ पढाकर प्राणीमानको अभीत अर्थात् निर्भय बनाया। प्रभु महावीर का पवित्र चरित्र बुद्धि अगम्य है। पूर्वोक्त और पश्चात्य इतिहासकारोंने भगवान महावीरके विषयमें

बटे २ ग्रन्थ निर्माताकर मुक्त बटते प्रगमा उच्चारित की है।
 अतः उर्ही भगवान महावीरशा गणित्त ब्रीवन प्ररित्त इम पुम्पवता
 मून त्रिपय है, जिने पट्टर प्रयेव आत्मा शान्ति सामनर सक्ती
 है तथा त्रिमवे पठन मे मारा ममार समय समय पर हिता की
 धप्रती ग्यायामे चयनर अपूर्व शान्तिका चिरकान तक अनुभव
 कर सक्ता है।



जन्म भूमि और माता त्रिशला के स्वप्न



ईस्वी मन् ५६६ वर्ष पूर्व यह भारतदेश छोटे छोटे राष्ट्रोंमें भिन्न २ नामसे विभाजित था। उस समय बिहार प्रान्तमें बंगाली नामकी नगरी थी। उसक अन्तर्गत क्षत्रीय कुट्ट नाम का ग्राम था। जिला गयामें जहाँ पर आज नखवाड नामका ग्राम बसा हुआ है वही क्षत्रीय कुट्ट ग्रामकी स्थिति बतलाई जाती है। यही भगवान महावीरकी पुण्य जन्मभूमि है।

यद्यपि यह क्षत्रीय कुट्ट नगरीके अन्तर्गत होते हुएभी एक स्वतंत्र नगरी थी। राजाका नाम सिद्धार्थ था।

अग्नि की शिखा देखी । इनमें रत्नजडित सिंहासन और धरणेद्र का भवन सम्मिलित करने से मोलह स्वप्न हो जाते हैं ।

नोट— किमी आमाय बाली ने ध्वजा की जगह मछली के जोड़े को मागा है ।

उन कथित स्वप्ना को देखकर रानी त्रिशलाकी नींद खुली । वह अपने स्वप्नोंके फलोंका विचार करने लगी । वह गावने लगी कि इन शुभ स्वप्नोंके देखनेसे एसा प्रतीत होता है कि अब शोध ही अत्याचारों का अन्त होगा । हिंसा, घृणा और पापाचार दुनिया से उठकर उनके स्थान में अहिंसा, प्रेम और विश्व शांति का साम्राज्य स्थापित होगा । इसी प्रकार जा भी रानी त्रिशला ने अपने स्वप्नों का फल निश्चित कर लिया था तो भी इन स्वप्नों का सदेह उसने राजा सिद्धार्थ को देना उचित समझा ।

प्रातः काल होते ही रानी त्रिशला अपने सदन से राजा सिद्धार्थ के शयनागार में गई और राजा का अपने स्वप्ना का पूर्ण अन्तान्त पढ़ सुनाया । राजा स्वयं दाम्प्रज्ञ थे । स्वप्नों का अन्तान्त सुनने ही उन्होंने रानी त्रिशला के समानही स्वप्नों के फलों का प्रभाव जान लिया था । फिरभी अति पुलकायमानहो गे । धरो शोक, मुखमाजन, व्यायाम, विलेपन और स्नानादि से शरीर वृत्त होकर सुंदर, आभूषण, वसनादिसे सुसज्जित राजा सिद्धार्थ राजसभा में पधारे । फिर उन्होंने स्वप्नशास्त्र विशारद ज्ञानियों को बुला भेजा । राजाज्ञा शिराधामें पंडितगण भी राजसभामें आये । राजाने भी उन्हें आदरपूर्वक योग्यतानुमार आमनत्रये । फिर विनयपूर्वक एक के बाद एक पूर्व कथित स्वप्ना का

उनके सम्मुख वर्णन किया और उनसे इन स्वप्नोंका फल निरूपित करने के लिये कहा ।

इस प्रकार राजा का सदेश सुन स्वप्नशास्त्र विशारदों का मुखिया बोला कि राजन, स्वप्नशास्त्रमें स्वप्नों की सख्या ७२ प्रकारकी बतलाई गई है । उनमें से ३० स्वप्न बहुतही शुभ फलके देने वाले होते हैं इन्हीं तीसोंमें से १४ या १६ स्वप्न उस रमणी रत्नको दिखाते हैं जिसकी कोखसे किसी तीर्थंकर या चक्रवर्तीकी उत्पत्ति होती है । रानी त्रिशलाको ता उक्त सत्र स्वप्न एकसाथही दृष्टिगोचर हुए हैं । इसमें प्रत्यक्षजान पडता है कि आपके राज्यमें लक्ष्मी और गौरव का नि सदेह विस्तार होगा । महारानीके गर्भा धानका समय पूर्ण होने पर उनकी कोखसे एक महान पराक्रमी सर्वगुण सम्पन्न चक्रवर्ती सम्राट अथवा तीर्थंकर का जन्म होगा । उसमें मसारके अत्याचार एवं अनर्थोंका दीर्घकालने लिये अतही जावेगा । ऐसी महान आत्माके आने से ससार भरमें सुख और शान्तिकी वृद्धि होगी । वह भव्य आत्मा जगत् पूज्य होगी और मसारके सतप्त जीवों को कल्याणका मार्ग प्रतावेगी ।

इस प्रकार स्वप्न विशारदोके वचन सुनकर राजा और रानी हर्षके मारे मनही मन फूल उठे । पश्चात् उन्होंने स्वप्न पाठने को आनन्द पूर्वक बहु मूल्य भट देकर विदा किया । प्रसवके दिन ज्यो ज्या निकट आने लगे राजा सिद्धाथके राज्य में धन, धान्य और राजाका सम्मानभी चारा ओर उत्तरोत्तर बढ़ने लगा ।



भगवान महावीर का

जन्म

६३

स्वप्न-पाठको के शुभ वचन सुन हर्षयिमान रानी त्रिशला अपने गर्भकी भली भाँति सम्हाल करने लगी। शास्त्रानुसूल प्रवृत्तिमें गर्भाधानकाल सुखपूर्वक बीतने लगा। एक एक दिन गिनते हुए पूरे नौ मास और साढ़े सात दिन बीत चुके। बस उसी समयसे जगत् की अनुचित प्रवृत्तियों ने कुछ पलटा खाया। दसोदिशाओ में आनन्द और अनुरागकी सहर्ष उमड़ पड़ी। चारो

और शीतल मद और सुगन्धित वायुका मचार होने लगा। ऋतु-राज वसतने प्रकृतिको सुगन्धित और स्वादिष्ट पुष्प एवं फलोसे आच्छादित कर दिया। जिघर दसो उधर आनन्द और हर्ष का साम्राज्य प्रसारित होने लगा। सर्वत्र सुन्दर निमित्त और शुभ शकुन स्वाभाविक प्रवर्तने लगे। ऐसी फूनी फली मनोहर आनन्द युक्त वसन्तका वह शुभ दिन ईस्वी सन ५६६ वर्षके पूर्वका चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तेरसका था। जिस समय चन्द्र हस्तोत्तरा नक्षत्र में था और अन्य ग्रह अनायास उच्च स्थान पर विराजमानथे उस समय रानी त्रिशलाने गर्भसे सिंह लक्षणवाले, स्वर्णके समान कान्तियुक्त, दिव्यरूप राशि पुत्ररत्नका जन्म हुआ।

जिस रात्रि में भगवान का जन्म हुआ उसी रात्रि में दैविक गतिसे राजा सिद्धार्थके कोप भडारादि व धन धान्य, वस्त्राभूषणादि म विपुल वृद्धि हुई। दु पिया प्राणीगण सहसा मुख का अनुभव करने लगे। चौसठ इन्द्र और जमग्य देवी देवताओने सुमेरुगिरि पर भगवान का जन्म महोत्सव मनाया। दूसरे दिन राजा सिद्धार्थ ने पुत्र जन्मकी खुशीम दीन गरीब याचको को ऐच्छिक दान दिया। जिन मन्दिरों मे जगह जगह बहुमूल्य द्रव्यादि मे पूजा रचाई, बन्दीखानेसे वैदियोंको छुडवाया, तगरम तोल और माप बढ़ाया और नानाप्रकारके मद्दात्सव करवाये। तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य दर्शन, छठे दिन रात्रि जागरण और ग्यारवे दिन अशुचिकर्म दूर करवाया। बारवें दिन वारसा महोत्सव करके जाति एवं सगे सबधियों का भाजन वस्त्राभूषण पुष्पमालादिसे सत्कार किया, और पुत्र जन्मके बाद अपने राज्यमे सब प्रकार की अनोखी वृद्धि होनेके कारण अपने पुत्र का नाम श्री वर्द्धमान रखा। तत्पश्चात्

धीरद्वैमात (भगवान महावीर) दूधक पानकारे गयार वृद्धि
 कारे भणे ।

मात-द्वैविह लीनमे धात्री वृद्धि लक्ष्याय इयं प्रवृत्ता यथा
 मई हे वि नर कभी गताय जगताया का जगद इत्यादि तत्र
 इती दुर्गे दुर्गादेरे माताय इवता मात अनी दक्षिण लक्षित न
 यधीनमे मदा हुता लया लयाया जिन्हा वार्दे मात न न हा
 मातर ताव काय या भवतार भर दने है ।

याज्ञियावम्या और घत

भगवान महावीर का याज्ञियावम्या क विषय मे बहुत कम
 उल्लेख पाये जाते हैं । यद्यपि याज्ञियावृद्धि कर्माय वा कुलार्थी
 वार्दे बहुत उल्लेख है उक्त कर्मावली याज्ञियावम्या पर भगवा
 नका उल्लेख है । जब याज्ञियावम्या का उल्लेख भगवान पर
 उल्लेख पाया जाता है, तदा न इय न यथाही याज्ञियावम्या कर्माय
 के समय प्रथम अथवा अथवा पश्चिम दिशा या पूर्विका मातिल
 कर्माय हम जानें हैं ।

भगवानकी दिग्दर्शन कर, मत्र लक्ष्य प्रतिष्ठा और
 माताय लक्षित अर्पणिकता थी । पूर्वदिशि प्रथम सर्व प्रकार
 लक्ष्य प्रतिष्ठा पर अथ दक्षिण मात याज्ञियावम्या शिराद्वय लक्ष्य
 बना लक्ष्ये लक्ष्य दक्षिण मात हुवा कि भगवानका हुवा प्रथम
 है इत्यं वार्दे, मे माताय कर्माय करी प्रथम कर्माय इत्यादि । मात
 याज्ञियावम्या प्रथम अथवा अर्पणिकता इत्यादि याज्ञियावम्या
 विद्या । उक्तका अर्थ निवारण करने के हेतु याज्ञियावम्या लक्ष्य पात्र

के अगूठेमे मेरु पवतको गिञ्चत् हिला दिला । तवतो एवदम इन्द्रका सन्देश दूर होगया पश्चात् प्रभुके अतुलनीय बल पर मुग्ध हो, भूरि भूरि प्रसशा करने हुए इन्द्रने भगवान बद्धमान का नाम महावीर रख दिया । तभी से भगवान बद्धमान महावीर नामसे प्रसिद्धि पाने लगे ।

यो तो भगवान महावीर की गान्यावस्थाके माहम और वीरता की छोटी-मोटी अनेक कौतुहलक वात शास्त्रोमें उपलब्ध हैं, परन्तु हम यहा उनके बलवा एव दूमरा उदाहण बतलाना चाहते हैं जिससे यहभी शिक्षा मिलती है कि छल वपट वाले शत्रु को प्रहार करने परास्त करने या दंड देनेमें कोई अत्याय या पाप नहीं ।

एक समय ग्रामके कुछ बालक बालक्रीडा कर रहे थे । उनका खेल इस प्रकार था कि एक लडका बृक्षपर चढ़ जाता था और दूसरे लडके उसे छून के लिये बृक्षपर चढ़ते जो लडका उसे छू लेता तब वह लडका उसकी पीठपर चढ़कर नियमित दूरतक जाता और वहा उसे छाड आता था । भगवान महावीरकी अवस्था तब साडेसात वषकी थी तब व भी इस खेलमें एक दिन सम्मिलित हुए । जिस समय यह खेल हो रहा था उस समय इन्द्र ने अपनी सभाम भगवानके अतुलनीय बलकी प्रसशाकी । उसपर एक देव बहुत आघित हुआ और प्रभुके बलकी परिक्षा करने के लिये पूणवेगसे यह धरातल पर उतर आया । उस देवने तुरत बालरूप धारण किया और उक्त बालक्रीडाम प्रभुके साथ शामिल हो ।

भगवान महावीरको उम देवकी पी

भगवान् उसकी पीठपर चढ़े ल्योही वह देव भगवानका लेकर पूण वेगसे ताड़ने वृक्षके समान ऊपरका उठने लगा। यह कौतुक देख दूमरे बालक भयभीत होकर भागने लगे। तत्र उसे मायावी कोई वपटी शत्रु समझकर महावीरने एक साधारण मुष्टिका प्रहार उस देवकी पीठपर किया। प्रहार होतेही वह देव तुरन्तही नीचे की धार धरातल पर झुक गया। यह देख बालरगण वदमान की प्रसन्ना करने लगे और उनका भयभी दूर हागया। भगवानकी मुष्टिके प्रहारमे उस देवका गव भी चूर-चूर होगया। उमने तुरन्त अपना जसली रूप धारण किया और प्रभुके सामन नत-मस्तर हुआ। पश्चात् विनय भाव पूण भगवानसे अपनी घृष्टताकी क्षमा याचना करके वह देव पुन देवलावका चला गया। यह घटनाभी भगवान् वदमानक महावीर नामधारी हानका समथन करती है। भगवानके साहस और बलकी अनेक घटनाए हैं जिसमे अनेक अतुलनीय बल और पराक्रमका पता चलता है। पाठकगण अथत्र शास्त्रामें ऐसी अनेक घटनाओंके विषयमें पढ सकते हैं।

नोट— जैन शास्त्रोंमें ऐसी घटनाए यह सिद्ध करती हैं कि शत्रुका दमन करनके लिये प्रहारादिस या ठोक-पीटकर काम लेना कोई अनीति नहीं है।

विद्याध्ययन

जब प्रभु महावीर सात वष के हुए तब उनके माता-पिताने उन्हें अध्यापकाके पास शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजा। अध्यापक लोग ज्यो ज्यो उन्हें पढाते, भगवान् उनसे भी आगे पढ जाते।

जो कुछ अध्यापक उनसे पूछने, उन सब बानारा उनमें महावीर अनायासही दे देते । उपाध्याय लाग जो इनका पढ़ाने थे इनकी अद्वितीय तीव्रबुद्धि देखकर अचम्भा करते लगते । अध्यापकोंके प्रश्नांके उत्तर जब महावीर सरलतासे देन लगे तां ये लोग पुन कठिन स कठिन प्रश्न करना आरम्भ करने लगे । परन्तु ज्या-ज्या कठिन प्रश्न प्रभुके साम्हने आत त्या-त्या महावीर अपने सरल स्वभावसे उनका ठीक ठीक उत्तर दे देते । इस प्रकार अतुलनीय तीव्रबुद्धि इस बालकको देखकर अध्यापकां का कुछ दूमराही आभास होने लगा ।

एकदिना अध्यापक और उपाध्यायोंके मिलकर प्रभु पर सजसे ऊर्ची बधांके प्रश्न करना आरम्भ किया । ये प्रश्न इतने कठिन थे कि जिनका उत्तर उपाध्यायभी शीघ्रतासे नहीं दे सकने थे । परन्तु महावीरने तां उन प्रश्नांका उत्तर भी उसी सरलतासे प्रथम-प्रथम ठीक-ठीक दे डाला । अबना अध्यापक जोर उपाध्यायोंकी आपें खुली और इस बालकके रूपमें उठेंगे किसी महान आत्मा का देखा । ऐसे तीव्र बुद्धि बालकका पाकर अध्यापक और उपाध्याय इस सान्निध्यमें पड़ गये कि इस बालकका पढ़ाया गया जाय । यह तो जा कुछभी तर्क-वितर्क यद्दुःख है उसका उत्तर अनायासही सही सही

इसप्रकार अध्यापक
ब्राह्मणका रूप लेकर उ
अध्यापकों और उपाध्यायों
जिनका उत्तर वे लोग तो
की आनामे उन सब

और युक्तियुक्त रूपसे दे टाला। जिसे देखकर, वही जो लाग उपस्थित थे, वे हृष्युक्त आश्चर्यान्वित हो गये और वह ग्राम्हण भी त्रिचार मग्न होगया। फिर उस ग्राम्हणने निम्नलिखित दस विषयाश्च प्रश्न और किये जा बहुतही जटिल और पेचीदा थे। मगर राजकुमारने उन सब प्रश्नों का घात की घातमें युक्तियुक्त मुलभा दिया। वे प्रश्न इन विषयासे संबध रखत थे। (१) सना सूत्र (२) परिभाषा सूत्र (३) विधि सूत्र (४) नियम सूत्र (५) प्रतिष्ठा सूत्र (६) अधिकार सूत्र (७) अतिदेश सूत्र (८) अनवाद सूत्र (९) विभाषा सूत्र और (१०) निपात सूत्र।

बहते हैं भावी भगवान महाधार मे निकले हुए हठी प्रश्नों के स्पष्टीकरणन आगे चलकर एक बहुत व्याकरण का रूप धारण किया। यही जनेद्र व्याकरण के नामसे प्रचलित हुआ और फिर इसीका अनुकरण जनाचार्य मुनि शकटायन और पाणिनीने भी किया।

तत्पश्चात् ग्राम्हणरूपी इन्द्रने महावीरकी भूरि भूरि प्रशंसा की और कहाकि यह बालक निकट भविष्यमें समारमें एक बडाही विचित्र महापुरुष सिद्ध होगा। प्रथम बुद्धिमत्ता रखत हुए अभिमान रहित इस बालकके स्वक्षण ऐसे जान पडत है कि यह अपनी विद्या और बुद्धिमे मयम, मत्स्य, त्याग और अहिंसा का मुदर पाठ समारका निग्याकर, दुखी जीवा के तापका मिटाकर, शांति का राज्य स्थापित करेगा। इतना कहकर ग्राम्हण ता अपने स्थान की ओर चला गया और उपाध्याय जी राजकुमार महावीरकी साथले राजाके पास गये। राजाने उचित सम्मान दे उपाध्यायजी से राजकुमारकी शिक्षाके विषयमें पूछा। उत्तरमें उपाध्यायजी ने

उक्त कथित सम्पूर्ण वृत्तान्त राजाको आद्यात् सुनाया । यह सुन राजामी बहुत अचभित और हर्षायमान हुये, और उपाध्यायजी का बहुमूल्य पुरस्कार द्वे पुलकित वदन विदा किया ।

युवावस्था

बालकाल और विद्याध्ययन काल समाप्त करने हुए युवावस्था का भी आगमन हुआ । इस समय भगवान महावीरके जीवनमें दो प्रकारके हेतु उपस्थित हुए । एक तरफ युवावस्था अपना पूर्ण विकास पाकर खिल रही थी तो दूसरी ओर आत्माभाव तेजीके साथ प्रकाशित हो रहे थे । सनारके माहक पदार्थोंसे आपका मन हट गया था और विरक्त भावनाएँ बढ़ रही थी । इस बातका पता आपके माता पिता और पुटुम्हियाको भी मालूम पडने लगा था । ऐसी अवस्थाम मातापिता पुत्र प्रेमसे बशीभूत होकर वर्द्धमानके विवाहका प्रयत्न करने लगे ।

जैनियोंकी दिग्गम्यरादि सम्प्रदाय भगवान महावीरको अखट बालब्रम्हचारी बतलाने हैं । परन्तु श्वेताम्बर आम्नायके धन्य-सूत्रादि ग्रन्थोंमें लिखा है कि भगवान की इच्छा न होने पर भी माता पिता की आज्ञा भग करना अनूचित समझ उन्होंने महाराज समरवीर की कन्या 'यशोदा' के साथ अपना विवाह किया । (प्रकृतिका नियम है कि पूव सचित कम भोगे त्रिना छूट नहीं सकते, फिरभी जानियोंने लिये भागभी कर्म निजगवा हेतु होता है) तदनुसार भगवान महावीरका कुछ कालतक गृहस्थावास भी करना पडा । आपका एक 'प्रिय दशना' नामकी कन्याभी हुई जा राजकुमार जामानी का ब्याही गई थी ।

इस प्रकार समार सुग्न भोगते हुए भगवान महावीर जल-कमलवत् मसारमें गृहस्थावास करते रहे । आपका जीवन एक पवित्र यागीकी तरह व्यनीत होता रहा । परम वरागी होने हुये भी आपने ३० यपकी आमुष्य तर दीक्षा न ली । इसका कारण यह था कि अवधिज्ञानसे आपने अपन ऊपर माता पिता का अतुलनीय मोह देखकर, यह निश्चय कर लिया था कि जयतर माता पिता जीवित रहगे तयतर म दीक्षा ग्रहण न कम्गा । एतदय गृहस्थावासमें भी आपका जीवन दीक्षित साधुकी तरह ममन्व रहिन अवस्थामें बीता ।

नोट— तीर्थंकर तो गभमें आतेही मति, श्रुति और अवधि ये तीन ज्ञानके धारी होते हैं । इसम अवधिज्ञान उसे कहते हैं कि जिसके द्वारा आत्माका अपने तत्कालीन अस्तित्वके समयमे पूवका सम्पूर्ण ज्ञान हो ।

दीक्षा

‘ शुद्धात्मरस प्रीतरे, कोई मिरला ठान ।
 निद्रा मोह कषाय न जामे, पुयपाप विपरीतरे ॥ कोई ॥
 जामे कम गुभाशुभ नाहि, बधमोक्षकी रीतरे ॥ काई ॥
 दशन ज्ञान विवल्प न तामें, शुद्ध चेतना मीतर ॥ काई ॥
 स्वामी सेवक भेद जात नश, रहतहार न जीतरे ॥ काई ॥
 भय न ह्व ह होत सिद्ध नहि, विन चेतन परतीतरे ॥ काई ॥
 प्रीनहात नश जात भूल चिर, जगसा हात अभीतरे ॥ कोई ॥ ”

यह ज्ञान पहिलेही बन गयी गई है कि पूज्य मातापिताका अपने ऊपर तितान्त माहू देखकर भगवान महावीरने यह निश्चय कर लिया था कि उनसे जीते जी मयम (दीक्षा) गृहण न करूंगा । तदनुसार जब भगवानकी अवस्था २८ वर्ष की हुई तब राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियताका स्वयंवाम होगया । मातापिताके वियोग से उनके परिवार और विशेषतः भगवान महावीरके उड़े भाई नन्दिसिद्धाको बड़ाही अगहनीय दुःख हुआ । समारथी जन्म मरण परिणतिका अनुमान कर करानी प्रभुन अपने बड़े भाईको बहुत मात्वन दी, पर उनके हृदयसे पितृ वियोगकी वेदना दूर न हुई । तिसपर प्रभु महावीरने उन्हें पुन ममभाया से बोले, 'भाई' समार म उतरादन और व्यय होना स्वाभाविक है । जन्म और मरण का दुःख समारी जीवार्थ माथ जनादिवालसे लगा हुआ है । ज्ञान दृष्टिसे विचार करो और ऐस उपाय माचो कि भविष्यमें ऐसे दुःखदाई सबधही न होने पावे । आत्मिक धर्म क्या है और यह जीव जन्म मरणके क्षण दुःखसे कैम रहित हा सतता है इसपर त्रिचार कीजिये । समार की माहमायाम आत्मा सदव शांति प्रिय है । अशान्तिके कारणसे मे उलझलकर आत्माका दुःखित करना भारी भूल है । माहममताका मनमे हटाइये और सतोपको धारण कीजिये' । इत्यादि भगवानके बचन सुनकर नन्दिवधनको सतोप हुआ ।

पश्चात् तत्कालीन क्षत्रियगणो ने मिलकर नन्दिवधनको पुरातनपृथानुकूल राजतिलक किया । नन्दिवधनका राज्याभिषेक होनेके बाद उनसे स्वामीवद्धमानने दीक्षा की आज्ञा मागी । इसपर बड़े भाई नन्दिवधन वाले, " भाई हालही मैं ता हमारे मातापिता का वियोग हुआ है अभीता हम अभी दुःखसे पीडित हैं ।

उममें जो कुछ सतोप है वह केवल तुम्हारे समीप रहनेसे है । अतः अभी कुछ दिन और ठहरो तथा राजकाज चलानेमें कुछ सहायता करो जिससे परिजनोमें सतोप और प्रजाजनोमें सुखका सञ्चार हो । प्रभु वर्धमानने अपने पिता तुल्य ज्येष्ठ बन्धुकी बात मानकर कुछ कालके लिये गृहवासमें ही माधु जीवन विताना आरम्भ किया । जब एक वर्ष व्यतीत हो चुका तब लावान्तिकदेवने आकर भगवान् मे विन्तीकी कि 'प्रभु! मसारमें अज्ञानाघ्नार फल रहा है । जनता आपम एक महापुरुष की छविनिहार रही है । नाकमें शान्ति स्थापित करना परम आवश्यक है । इसलिये दीक्षा ग्रहण कर जगतने दुःखी जीवोको सुखका माग दर्शाइये-इत्यादि ।'

लोकान्तिकदेवके इस प्रकार वचन सुनकर अपने ज्येष्ठ बन्धु नदिबधनकी आज्ञा से भगवान्ने एक वर्ष तक नित्यप्रति वर्षा-वर्षीय महादान देना आरम्भ किया । एक वर्षम यह दान करोडो मोहरोका हुआ जिमे पाकर याचकबृन्द भी महान हुए । दान द्वारा इसप्रकार त्याग करना अथवा परिग्रह रहित होना मोक्ष-माग म सलग्न होनेकी पहली सीढ़ी थी ।

पश्चात् भगवान् महावीरन नरनरेन्द्र तथा देवदेवद्र द्वारा रचित महामहात्सवपूर्वक अगहन बदी दशमीके दिन स्वयं दीक्षा धारणकी । उसी समय भगवान्का चौथा मन पयव ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

नोट— जैन लोग ज्ञानक पाच भेद मानते हैं (१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) जवधिज्ञान (४) मन पयवज्ञान (५) केवल ज्ञान अर्थात् सवज्ञ अवस्था ।

भोषण प्रतिज्ञा

॥ क्षमा वीरस्य भूपणम् ॥

भगवान् महावीरने जिस दिन दीक्षा ग्रहणकी उसी दिन इस नाशवान शरीर द्वारा पूर्वोपाजित कर्मों का बदला क्षमताके साथ शान्ति-पूर्वक चुकानेका अटल निश्चय कर लिया। अतुलनीय बल और प्रखर बुद्धि होते हुएभी उन्होंने ऐसी कठिन प्रतिज्ञा करली कि "यदि कोईभी देव दानव मनुष्य एव त्रियञ्च कितना ही कष्ट क्या न दे वह सब मुझे मम्यक प्रकार से शान्तिपूर्वक सहन करना होगा।" क्योंकि ऐसा करने से ही दुष्ट कर्मका नाश होकर सच्चे सुखकी प्राप्ति होगी। इसप्रकार प्रतिज्ञा करने के बाद भयकर से भयकर कष्ट एव उपमर्ग आने पर भी मन, वचन और काया में क्षमापूर्वक शांतिके साथ उसे सहन करनाही भगवानका एवमात्र ध्येय हा गया। पाठकगण देखेंगे कि अवस्था भगवानने पौदगलिक (जट) राज्यमें दण्डों का विधान और पापियों से घृणाका अन्त हो गया, और उनकी जगह घोरसे घोर अपराधके लिये इस आत्मशामनमें केवल क्षमा और उसीके द्वारा पश्चात्ताप करने पापोंके प्रक्षालनका विधान बन गया।

प्राणीमात्र को अपनाअपना जीवन प्रिय है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। इस सत्सार में प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है। किसी भी जीवका किसी तरहका कष्ट पहुचाना अघम है। सब जीव अपने-अपने जीवनमें जीवित रहनेका समान अधिकार रखते हैं। सगरी सुखकी वाञ्छा करते हैं। अत उह मन, वचन अथवा कायासे दुःखी करना महान पापका कारण है। ऐसी उच्च कोटि की साम्य भावना प्रभुके हृदय में जाग्रत होगई।

पहले प्रभुकी असाधारण विद्या, अलौकिक प्रतिभा और प्रचंड वीरताका उपयोग राजकाज मञ्चालनमें होता था परन्तु जब उन्हीं शक्तियाका सदुपयोग जगतकी स्थिति, हित और उत्थानमें होगा । सत्कारकी दसो-दिशाओमें अब समता उनकी साधिन बनेगी ।

जब प्रभुने दीक्षा धारणकी उम्र समय भगवानके गरीरपर इन्द्रने जो वस्त्र रखाथा वह केवल एक वर्ष तक रहा । बादमें भगवान महावीर दिगम्बर अवस्थामें स्वतंत्र बिहार करने लगे । परन्तु अपूर्व अतिशयके कारणवे किसीको नग्न नहीं दिखते थे । उनका दृश्यही अलौकिक था ।

अब उक्त कथित निश्चय का पूरणरूपसे पालन करनेके लिये भगवानने द्रव्य और भावसे प्रायः मौनव्रतको ही धारण किया । जय तक प्रभुकी छद्मस्थ अवस्था रही तब तक अनेक प्रकारके कष्ट सहते हुए प्रभुने इसी व्रतका पालन किया । यह छद्मस्थ अवस्था लगभग बारह वर्ष पर्यन्त रही ।

नोट— केवल नान प्रगट हानेके पूर्वकी अवस्था छद्मस्थ अवस्था कहलाती है । तीर्थकराके जीवामें और दृश्यमें कुछ अलौकिक विशेषताएँ होती हैं जिन्हें उनका अतिशय कहा जाता है ।

प्रथम बिहार और उपसर्ग

लक्ष्मी की परवाह न रखते,	भले धुरेका ख्याल नहीं ।
मृत्यु छडी दरवाजे पर हो,	तो भी डरका काम नहीं ॥
लालच, भयके चक्र जिन्होपर,	चलते निशचिन जहा कहीं ।
तो भी व्यास मागसे विचरित	तोने मैं नर नीर गयी ॥

दीक्षाने बाद भगवान महावीरका वारह वषका जीवन उग्र तपस्याका जीवन था। इन वारह वर्षोंमें भगवान महावीरको जिन-जिन सक्टाका सामना करना पडा उन्हें पढ़कर आत्मा कपायमान हो जाती है, हृदय विदीणसा बन जाता है, धैर्य छूट जाता है और महाविकराल भयकर क्रूरता का नग्न दृश्य सामने आ जाता है। परंतु भगवान के उत्कट बल, साहस और आगाध सहनशक्ति के सामने ये सब सक्टे ऐसे फीके पड जाते हैं कि जैम सूयके पूण प्रकाशके सामने चंद्रका तेज उदास मालूम हाने लगता है।

भगवान महावीर को अत्र अपने पूर्वोपाजित कर्मोंका कर्ज चुकाना है। कर्ज चुकाने लिये जिस प्रकार काई मनुष्य अपने साहूकारी को एकत्रित करता है और वे सब अपना अपना कर्ज वसूल करने को आकर खडे हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार भगवानभी अप पूर्वोपाजित कर्मोंका कर्ज चुकाने को अपने परो पर खडे हुए हैं। पाठकगण देखेंगे कि जिस प्रकार भगवान इन भयकर उपसर्गोंका बदला अपूर्व धामा, शांति, अहिंसा, सहिष्णुता, त्याग और सयम के साथ चुकते हैं और उनपर विजय प्राप्त करते हैं। ऐसा अद्वितीय उदाहरण एव आदर्श ससार में शायदही अन्यत्र मिल सकेगा।

भगवानकी दीक्षा महोत्सवके समय चदनादि उत्तमोत्तम सुगन्धित पदार्थोंका जो लेप हुआ था उसकी सुगन्धसे भीरे भस्त होकर दशा दिशाओंसे आकर भगवानके शरीर पर बैठने लगे और उसका रसपान करने लगे। यहां तक कि उस सुगन्धके समाप्त होते तक उन भ्रमरीने भगवानके शरीरका रस और मांस चूसना और नोचना आरभ कर दिया। उम समयकी वेदना महान

दुःखदायक और अवर्णनीय थी परन्तु धीरे गभीर भगवान ने उस हँसते हँसते हृष एव शान्तिपूर्वक सहन कर ली ।

दूसरी ओर वनदेविया भी उमी विलेपन की महक से उमो स्थान पर पहुँची जहाँ प्रभु महावीर थे । व भी प्रभु के लावण्यमय शरीर में उठती हुई तरुणाई का और प्रेम भरी चितवन को निहारकर मोहित हो गई और उन्हें अपने माहजाल में फमाने के लिए अनेक प्रकार के लुभाने वाले हाव भाव दिखलाने लगी । परन्तु जिस प्रकार फूल को पछुरियाँ हीरे का बंध नहीं सकती उसी प्रकार वनदेविया भी प्रभु के पवित्र मुदर भावों पर रच मात्र भी अमर न कर सकी । प्रभु अपने निश्चय में मेरुपवन के समान बटल रहे ।

ऐसी अनोखी वैराग्य मुद्रा का उन पृथक्तियों पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे लज्जित हो अपने सौन्दय के प्रति ग्लानि करने लग गई । उनके रूप लावण्य युक्त नेहाभिमान चूर - चूर हो गया और उसी क्षण उनमें शुभभावनाया का सचार होने लगा । मच है पारस की सगति में लोहा भी साना बन जाता है ।

इस प्रकार उन शान्ति मूर्ति भगवान ने दानो उपसर्गों को समभाव से सहन किया । अर्थात् माँस तक काटने वाले भ्रमरो पर किसी तरह का द्वेष नहीं और मन को लुभाने वाली देवियों के हावभाव पर राग नहीं किया । यही भगवान महावीर की अनुपम सहिष्णुता एवं वीरता का आदर्श नमूना है ।

इस तरह माँग में उपसर्गों का सामना करते दो घड़ी दिन तक प्रभु ने कुमार एकान्त रूप से अपने निश्चय किया नासिका जमाकर

नाट- जैन योग शास्त्र में शुद्ध ध्यान ध्याते समय कार्योत्सर्ग (काउत्सर्ग) करते वकन दृष्टि को नागिका के अग्रभाग पर केन्द्रित किया जाता है पश्चात् ध्यान मग्न होते हैं ।

ग्वालों की क्रूरता

कुमार गात्र के एकांत स्थान में जब भगवान् पड़े खड़े ध्यान में मग्न थे उस समय एकाएक कुछ ग्वाले अपने बैला को चराने के लिए वहाँ निकल आये थोड़ी देर के बाद ग्वाला को कुछ काम के लिए वहाँ से अलग जाना पड़ा । उन्होंने विचार किया कि यह मुनि यहाँ खड़ा खड़ा अपने बैलो का देखता रहगा । इस जताकर अपने लोम अपना काय कर आवे । ऐसा सोचकर उन्होंने प्रभु को जतलाकर बैला को वही चरत हुए छाड़ दिया और अपने काय के लिए चल गये । परन्तु भगवान् तो ध्यानस्थ थे । उन्हें तो किसी भी बात का प्रयाजन न था । कुछ देर के बाद बैल वहाँ से चरत चरते इधर-उधर चल दिए । पश्चात् ग्वाले अपना काम करके लौटे और वहाँ आकर देखा तो उन्हें बैल नहीं दिखे । तब तो उन्होंने बैला का ढूँढना आरम्भ किया । बहुत देर तक ढूँढने के बाद जब बैल उन्हें नहीं मिले तो वे क्रोधित हो हताश हो गए और वहाँ आये जहाँ प्रभु महावीर ध्यानमग्न पड़े हुए थे । वहाँ आकर देखा तो बात प्रभु के पास ही चर रहे थे । इस पर ग्वालो को बहुत सदेह हुआ । वे मोचने लगे कि हो न हो इसी ध्यानी पुरुष ने हमका इतना श्रास दिया । यह चोर भी हो सकता है क्योंकि यदि हम इतनी खाज अथवा जाँच पड़ताल न करते तो सम्भव है कि यह हमारे बैलो का चुरा ले जाता । इसलिए इसे मारकूटकर यहाँ से भगा देना

चाहिए नहीं ता ये कुछ और ऐसे उपद्रव करेगा। ऐसा विचारकर ग्वालो के पाम जा रस्सी थी उससे उन्होंने भगवान को निदयता पूण सडा - सड मारना प्रारम्भ कर दिया। परतु भगवान अपने ध्यान से किञ्चित भी विचलित न हुए। ग्वालो की भी भीभत्म क्रूरता का भी उन्होंने अपने पूर्वोपा-जित कर्मों के फला की अदाई का सस्ता और सरल सौदा समझा।

भगवान के साथ जब यह भीषण कांड हो रहा था तब इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से मालूम किया कि थोड़ा ही समय हुआ है। प्रभु ने दीक्षा धारण की है और आज इतना भयकर उपसग हा रहा है, कुछ भी हा इस समय भगवान की रक्षा करना परम आवश्यक है। ऐसा विचारकर शीघ्रातिशीघ्र इन्द्र उस स्थान पर आये और ग्वाला की उनके दुष्यवहार से रोका और उन्हें वहाँ से भगा दिया। तदनंतर प्रभु का ध्यान समाप्त हुआ तब इन्द्र ने उन्हें विनयपूर्वक नमन कर नम्र भाव से प्रार्थना की कि "प्रभु! अभी ता दीक्षा का थोड़ा मा समय बीता है, अभी बारा वष और बिताना है। इतने समय में न मालूम कैसे कैसे भयकर उपसग आवेगे। अभी से शरीर की ऐसी दशा हो रही है इसी शरीर द्वारा ता जगत का कल्याण होने वाला है। अत आज्ञा दीजिए तो हम सेवक के रूप में आपके शरीर रक्षक बनकर आपके भाय रह सकें।"

इस पर प्रभु ने उडे ही शान्त और प्रमत्त बदन हो इन्द्र को उत्तर दिया "देवराज! ऐसा कभी हुआ न होगा, कर्मों का फल तो अवश्य ही भोगना पडेगा। जो तीर्थंकर होते हैं वे दूसरो की सहायता कभी नहीं चाहते। वे अपनी ही प्रतिभा से, अपनी ही

धैर्य और गम्भीरता से सामना करते हैं और शान्ति के साथ उन्हें सहते हैं। वे अपनी ही आत्मा के विकास पर केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं चाहे उनका यह मीदा कितना ही महंगा क्यों न हो। शक्रेन्द्र ! इस कथन में न तो आश्चर्य का आभास है और न आपकी सहायता की आवश्यकता ही है।”

यह सुनकर इंद्र ने मन ही मन भगवानके रचालम्बन की प्रशंसा की और उन्हें नमन कर अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया। परन्तु भगवान के इतना कहने पर भी स्वस्थान से जाने के पूर्व इंद्र ने मिद्धाय नामक देव को भगवान पर उपसर्गों का रोकने के लिए वहाँ रक्षक रूप में रख ही दिया। उधर भगवान भी अपने कर्मों की निजरा करने के लिए पुन ध्यान मग्न हो गये।

नोट— महान आत्माओं के पुण्य के प्रभाव से इंद्रादिक देव भी प्रवाहित होकर उनकी सेवा के लिए तत्पर हो जाते हैं। ऐसा जैन शास्त्रों का कथन है इसमें अतिशयोक्ति नहीं है।

प्रथम चतुर्मास

भगवान महावीर की छद्मस्थ अवस्था की अवधि बारह वर्ष की थी। भगवान पर इन बारह वर्षों में भयंकर उपसर्ग हुए पर हम यहाँ उनमें से कुछ मुख्य मुख्य उपसर्गों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

प्रभु महावीर का प्रथम चतुर्मास मोराकसन्नियेश में हुआ वर्षा ऋतु के आरम्भ होते ही प्रभु ने माराकसन्नियेश में दुइजत नामक एक तापस के आश्रम में अपना निवास आरम्भ

किया उस आश्रम का कुलपति प्रभु के पिता का मित्र था। इस आश्रम में और भी अनेक तपस्वी रहते थे। परन्तु आश्रम के जिस स्थान में प्रभु ठहरे थे वहाँ वे सदैव ध्यान भग्न रहकर ही रात दिन बिताते थे यहाँ तक कि उस स्थान के आसपास इतनी घास ऊग गई थी कि वहाँ आश्रम की गोए आकर चरती और उसे तहम नहस करती तोभी ध्यानस्थ प्रभु उसकी कुछ भी परवाह न करते। इस तरह वह स्थान दिन व दिन नष्ट होने लगा उसे देख दूसरे इर्षालु तपस्वी कुलपति से प्रभु की शिकायत करने लग कि न मालूम यह कैसा तपस्वी है कि अपने स्थान के आसपास की परवाह तक भी नहीं करता और न उसे साफ स्वच्छ रखता है। यह बहुत कायर मालूम होता है ऐसा तापस आश्रम में नहीं होना चाहिए, इत्यादि।

तपस्वियों के वचन सुनकर कुलपति भी उनकी बातों में आ गये और जहाँ पर प्रभु ध्यान करते वहाँ आकर उन्हें कुछ बातें सुनाई। परन्तु क्षमाशील प्रभु ने कुलपति की सब बातें प्रसन्न बदन सुनली और उनके प्रति जरा भी रोष न लाया। परन्तु लोक मर्यादा और साधु भाग में प्रवृत्त होने वाले लोगों की रक्षा के लिए उनके मन में एक विचार उत्पन्न हुआ। इस विचारके उत्पन्न होते ही प्रभु ने उसी समय निम्नलिखित पाँच प्रतिज्ञाएँ कर वहाँ से अन्यत्र चल देने का निश्चय कर लिया वे पाँच प्रतिज्ञाएँ इस प्रकार थी—

- (१) अप्रीतिकारक स्थान में कभी न ठहरना
- (२) प्राय मौनवृत्त में ही रहना
- (३) कहीं भी रहें कायोत्सग ही धारण कर रहना
- (४) भ्रजली ही को पात्र मान उसी में

(५) गृहस्थ से वित्त न करता अर्थात् दीनवृत्ति न दिखाना ।

ऐसी कृती प्रतिनाए रर वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही भगव न न उस आश्रम स एतदम विहार कर दिया और आस्थिक ग्राम में पधार गये ।

इस आस्थिक गाँव में शूलपाणि नामक एक यक्ष रहता था, जा गाँव के जीवधारियों को भारकर खाया करता और उनकी हृदिया के ढेर लगाया करता था, जिससे उस गाँव का नाम आस्थिक गाँव अर्थात् हृदिया का गाँव पड गया था । गाँव के कुछ मनुष्यों ने उस यक्ष को खुश रखने का प्रयत्न कर रखा था जिसके द्वारा उस नरभक्षी यक्ष से उनकी रक्षा हा सगे । गाँव में प्रभु ने यह बात सुनकर उस यक्ष के यक्षालय म ही ठहरने की अभिमाया प्रकट की । इस पर लोगो ने प्रभु से प्रार्थना की कि स्वामिन् उस यक्ष के समीप निवास करना उचित नहीं, क्योंकि उसके पास जाकर प्राण बराना रठिन है । इसलिए हम लोगो की प्रार्थना है कि आप वहाँ जाने का और ठहरने का विचार त्याग दीजिये । परन्तु भगवान उस यक्ष के भय से कब भयभीत होने वाले थे ।

प्रभु वहा से नलकर शूलपाणि के यक्षालय में जा पहुँचे और उसके एक कोने में रहने का विचार कर लिया और ध्यान करने लगे । रात्रि का समय होने लगा, कालिमा चारो ओर छा गई, परन्तु मौनवृत्ती प्रभु अपने कायात्सग ध्यान मे ज्यो के त्यो ही अचल छडे रहे । रात्रि के नियत समय पर वह यक्ष वहा आया । तपस्वी भेष में प्रभु को अपने यक्षालय में देख उसके शोध की सीमा

न रही। उसी समय उसने एक भयंकर गजना की जिससे आसपान के पशु पक्षी घबरा गये परन्तु भगवान जराभी चल विचल न हुए। पश्चात् उनमें एक बड़ा डरावना रूप बनाकर भगवान को भानि - भानिमें डराना शुरु किया किन्तु वीर प्रभु पर उसका कुछ भी असर न हुआ। तीसरी बार उसने एक विकराल सप का रूप धारण किया और जोर जोरसे फुफकारता हुआ भगवान का जगह जगह इसना मारू कर दिया, पर अटूट आत्मबल और धार तपोवन के प्रभाव से प्रभु का कुछ भी न बिगडा बल्कि उनकी मुख मुद्रा पर निभयता और आनन्द प्रभा दुगनी झलक उठी।

सिद्धाय ध्यन्तर देव यह सब हाल देख ही रहा था, वह तुरन्त यक्ष के पास आ ग और उससे कहने लगा कि 'अरे! अरे! तूने यह क्या उपद्रव मचा रक्खा है, तू नहीं जानता कि इन्द्र महाराज भी इन्हे अपना पूज्य मानते हैं जोर इन्हें नमन करते हैं। तूने इनके मुखचन्द्र में भी न पहचाना किय तो जगत्पूज्य जात्मा हैं। दूसरे तो तेरे डर से दूर भागते हैं पर ये छुद आकर तेरे यक्षालय में ठहरे हैं, इसी से तुम्हें मालूम कर लेना था कि ये अवश्य कोई अपूर्व बलधारी आत्मा हैं। चल चल यहा से दूर हो इत्यादि'

यक्ष तो अपनी अनीति और अत्याचारों का प्रभु पर कुछ भी असर न देख मन ही मन कायल हो ही रहा था, तिम पर सिद्धाय ध्यन्तर देव के वचन से तो उसकी क्रूरता बिलकुल ही विलीन हो गई। वह मन ही मन पछताने लगा और अपने

बार बार क्षमायचना करने

आत्मशक्ति ने राक्षसी शक्ति पर विजय पाई। वह यक्ष अपने क्रूर बर्षों की निन्दा करने लगा। वह प्रभु के चरणों में आकर गिर पड़ा और तानाबिधि से अपने पूव कृत्यों पर पश्चाताप करने लगा। प्रभु के तपोवन एक आत्मशक्ति ने यक्ष की बायां पलट कर दी। यह उसी समय में सम्यक्त्व की वन प्रभु की उपासना में लग गया।

चण्डकौशिक सर्प की सद्गति

भगवान महावीर वाचाल सन्निवेश से त्रिहार करके ज्यो ही श्वेताम्बरी नगरी की ओर खाना हुए त्यों ही माग की एक भयानक अटवी में एक ग्वाल से उनकी भेंट हुई। भगवान की अनुपम शान्ति और गम्भीर शारीरिक स्थिति का देख उस ग्वाल ने पूछा 'प्रभु आप किस आर पधार रह हैं ?'

प्रभु ने उत्तर दिया— 'श्वेताम्बरी की ओर'। इस पर उस ग्वाल ने विनय पूर्वक भगवान से विन्ती की कि 'स्वामिन्' श्वेताम्बरी का यह माग तो विलकुल सीधा है परन्तु इस माग में बहुत बड़ा भय है। इस रास्ते में एक बहुत ही भयानक दृष्टिबिपवाला 'चण्डकौशिक' नामक सर्प रहता है जिसकी दृष्टिमात्र से मनुष्य तो क्या उससे भी बड़े बड़े विशाल प्राणी भी नहीं ठहर सकते। यदि कोई अकस्मात् वहा जा निनले तो वह शीघ्र ही भस्मीभूत हो जाता है। अतः आप कृपाकर दूसरे अन्य माग से श्वेताम्बरी को पधारें तो अच्छा हो।

भगवान महावीर तो एक नितान्त निभय आत्मा थे। वे इस ग्वाल की भयोत्पादक वाता से विलकुल ही विचलित न हुए और

उन्होंने उसी माग में जाने का निश्चय कर लिया। उन्होंने सोचा कि उस सप के अन्दर इतनी भागी शक्ति है और वह उमका दुःखपाग कर रहा है यदि उसे किसी तरह थोध हा जावे तो वह उसी शक्ति द्वारा मदुपयाग करवे अपना कह्याण भी कर सकता है। क्याकि शक्ति तो जात्माका निजगुण है। जिम शक्ति स जीव पार नक्की नीव डामता है उसी शक्ति द्वारा वह मोक्षभी प्राप्त कर सकता। ऐमा विचारकर भगवान उसी सप की ओर रवाना हो गये और उमकी बामी पर जाकर ध्यान लगा दिया।

भगवान को ध्यान लगाये जब कुछ समय बीत चुका तब वह सप भी अपनी बामी से बाहर निकला। वहा से बाहर निकलते ही उमकी दष्टि ध्यानस्थ प्रभु पर पडी। वम उमके थोध की सीमा न रही। वह थोध से ज्वालामय हाकर सोचने लगा कि 'मेरे इस निजन शात राज्य में जहा हिमक जानवरों तबका प्रवेश करने का हिम्मत नही होनी वहा इस निर्भीक अचल मनुष्यको खडे रहनका साहम कमे हुआ ?' वस, इनना माचकर उमने ऐसी भयकर विपथरी फुफकार छोडी कि उस जगल म सबत्र विप की चिनगारिया फैल गई और चारो आर नील वणकी आभा छा गई। उससे दूर दूर तक वचेबुचे जीयजतु भस्म हो गये। परतु भगवान पर उमका कुछ अमर न पडा। तब ता वह थोध क मारे और भी आगबबूला हो गया और पूण बंग से लपककर उसने भगवान के पर के एक अगूठे का जोरने उस लिया। तब भी भगवान पहले के समान ही अटल और ध्रुव की तरह अचल ध्यान मग्न खडे के खडे रहे। उन्हें सपकी फुफकार और काटने का कुछ ध्यान ही

न था। तब तो सप को बड़ा आश्चय हुआ। पहले तो उसे अपन विपप्रयाग का भारी गव था, परन्तु भगवान को विलकुल स्वस्थ और शांत रूप में खड़ा हुआ देख उसका सारा गर्व चूर-चूर हो गया। फिर भी उसने अपनी शक्ति की एक प्रार और परीक्षा की। उसने अबकी बार लपक-लपक कर भगवान के शरीर में इधर-उधर पूर्ण वेगसे काट कर उहे घराशायी करना चाहा। परन्तु आत्मबल के सामने उसे इस बार भी पूववत् विफलता ही मिली।

अबता सप टकटकी लगाकर प्रभुके तरफ देखने लगा। इतना बड़े उपसर्ग के बाद भी उसने प्रभुके मुख मडल पर शांति क्षमा और दया की उज्वल ज्योति ही देखी। इस अनोखे दृश्य को देखते ही सप तो मुग्धसा बन गया। उसने मन के परिणाम आपसे आप बदलने लगे। उसका अन्त करण स्वच्छ और निमल होने लगा जैसे-जैसे वह भगवान को निहारता बसे-बसे उसकी विपमयी क्रुरता विलीन और मनके परिणाम शुद्ध होकर उत्तम उत्तम भावनाएँ जाग्रत होने लगीं। अब सप की आत्माने पलटा खाया। बस उसका यही दृष्टिकोण तो भगवान को अपनी आत्मशक्ति से पलटाना था कि सप ने आत्मवल्याण की ओर दृष्टि फेरी।

जब भगवान की ध्यान मुद्रा गूली तब वे बोले 'रे चण्ड' कौशिक ! समझ ! समझ ! तू अपने पूर्व भवको स्मरण कर और इस भव म की हुईं भूलो पर पश्चानाप कर। साच तू कौन है, कहासे आया है और क्या कर रहा है ? इत्यादि भगवान के शान्ति मय वचन सुनते ही उसे 'जाति स्मरण' ज्ञान उत्पन्न हो गया जिसने आधारमे उसे अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया। उसने

देखा कि अटो' ।। मास की साधना के हेतु बना हुआ पूवभवका साधु, म शोध क कारण कम साधकर 'चण्ड कोशिक' मप हुआ हू । फिर भी इस समय महाशोध कर अनेक जीवा के प्राण हर रहा हू और त्रास दे रहा हू । इतनाही नहीं जगत्पूज्य कुरुणासागर भगवान को भी मैंने निदयतासे डमा है । न जाने अय मेगी क्या गति होगी । वस अब तो उसकी शक्ति ने पूणरूप से पलटा घाई । सप पहिने जितना उग्र शोधी था आजसे उतनाही शान्तनाकी मूर्ति बन गया, माना एम माशाभितापी आत्मा न वराम्य मुद्राका धारण किया हो । सप ने अनशन करना आरम्भ कर दिया और अपने आयुष्य कम को पूणवर आठवे स्वर्ग का प्राप्त किया । पाठक गण । जिस सप को भगवान की शान्त मुद्रा ने आठवे स्वर्ग का स्वामी बनाया यही तो प्रभु की प्रभुता है जहा उत्तम क्षमा, शान्ति, सत्य और अहिंसा का प्रचण्ड प्रभाव मूर्तिमान हा कर दृष्टिगोचर होता है ।

नोट- जडवादी लाग विपले सप के बाटने और फिर भी जीवित रह जाने में सहमा विश्वास नहीं कर सकते । परन्तु आज भी देखा जाता है कि मन्त्रादि क्रिया के प्रभाव से बडे बडे भयकर सपें वस में किये जाते हैं । मन्त्रादि शब्द जडरूप होने पर भी इतना प्रभाव रखते हैं तब आत्म शक्ति के प्रभाव में तो अपूर्व बल भरा हुआ है तिस पर महानयोगी के शरीर पर विष का असर न हो यह स्वभाविक अर्थात् अतिशयोक्ति-रहित है । इस पाठ में क्षमा की सुन्दर विजय का दिग्दर्शन कितना शिक्षाप्रद है ।

मुद्गुष्टदेव का उपसर्ग

पूवभव का बदला

अनेकोनेक स्थान में त्रिहार करते हुए एक दिन भगवान् सुरभीपुर की ओर पधार रहे थे। मार्ग में गंगा नदी पार करके सुरभीपुर जाना पड़ता था। जब भगवान् गंगा नदी के किनारे पहुँचे तो मल्लाह की दृष्टि उनके शान्त और मनोहर मुख मटल पर पड़ी। वह ऐसी छत्रि देखकर एकदम प्रसन्न हो उठा और भगवान् से विन्ती करने लगा कि 'प्रभु! आप नाव पर पधारिये मैं आपका उस पार उतारकर अपने को कृतकृत्य समझूँगा। भगवान् ने उसकी प्रेमसनी वाणी स्वीकार करली और नाव पर सवार हो गये। मल्लाह ने नाव खेना आरम्भ कर दिया।

इधर गंगा नदी के किनारे एक 'मुद्गुष्ट नामक' देव रहता था वह पूवभव में एक सिंह की योनि में था। वह सिंह बिना कारण ही पूवभव में 'त्रिपुष्ट वासुदेव' नामक शरीर धारी भगवान् महावीर द्वारा शिकार हो गया था। उसे इस समय भगवान् से अपने पूवभव का बदला लेनेकी सूझी। वह मन ही मन सोचने लगा कि 'अपने बलके गर्व में आकर इन्होंने निष्कारण ही मेरा वध किया था, अतः इस अवसर पर इनसे बदला लेना अच्छा है अब मैं भी इन्हें जीवित न रहने दूँगा।' कम की सत्ता सबसे बलवान् होती है। जो जैसे कम करता है उसे उसका बदला अवश्य चुकाना पड़ता है। कम की इस सत्ता के आधीन होकर कोई भी बजदार अपना बर्जा चुकाए बिना ऋण मुक्त नहीं हो सकता, चाहे वह राजा हो अथवा रज ऊँचहो या नीच, तीर्थंकर हो या अवतार-कर्म अपनी शासन सत्ता एकसी चलाते हैं।

इतना विचार मन में आने ही वह मुदृष्ट दैव अपना बदला लेने को उस नाव पर लपका । उसने नाव के पास जाकर एक भयकर गजना की । उस गजना से जितने मनुष्य नाव में बड़े हुए थे, वे सब भयभीत हो गये किंतु भगवान महावीर ज्याड़े त्यो घयता से बैठे रह करि वह दैव भगवान को सम्बाधन कर वाला 'कि अरे तू अब अपने पूवजन्म का खाता चुना, अब मेरे चुगल से तू जिंदा नहीं बच सकता, तूने भी बिना कारण मेरे प्राण लिये य सा अब तू भी अपने प्राण दान को तैयार हो जा ।'

इतना कहकर उसने अपनी मायासे एक बड़े वेग की आघी छोड़ी । पानी की लहर जार जार मे उछाल लेने लगी । भाड टूट-टूट कर गिरने लगे । नाव बीच नदी में भयकरता से ऊपर नीचे जाने लगी । मत्नाह ने भी घबराकर अपनी पतवार छोड़ दी । पानी की भीषण भराहट से सबके होणहवाण उड गये । नाव क डूब जाने में कोई भी बमर नहीं दिखती थी । परतु इतनी भयकरता का दृश्य देखने हुए भी भगवान महावीर जरा भी न घबराये । प्रभुका अलौकिक साहस और धय देखकर सबके सब अपनी बरुण दृष्टि उहीं की तरफ लगाये अपने अपने इष्ट देव को माद करने लगे ।

इस भयभीत दृश्य का सम्बल और बम्यल नाम के देवभी दख रहे थे । ये देवभी उसी जाति के थे जिम जाति का मुदृष्ट था । भगवान पर यह आपत्ति दख ये देव तुरन्त प्रभुक पास आये और मुदृष्ट का मार भगाया और उसकी कुल माया दूर कर दी । तन्ना सबके जीव में शान्ति आयी । नाव भी पार लग गई और सब लोग पण के पणान की पणान करने लगे तब से पार करने ।

गोशाला

मधुनी नामक एक चित्रपट दिखाने वाला और उसकी गभवती स्त्री एक समय शरण ग्राम में पहुँचकर गृहल नाम के ग्राम्हेण की गोशाला में ठहरा। वहाँ उसकी गभवती स्त्री को पुत्र पैदा हुआ। वह बालक गोशाला में जन्मा था इसलिये उसके माता पिता ने उसका नाम गोशाला रख दिया। समय पाकर गोशाला बड़ा हुआ। उसने भी अपने पिता का धंधा करना आरम्भ किया। गोशाला बहुतही चातुर्य और विचित्र स्वभाव वाला था। योहें दिन के बाद ही वह अपने माता पिता से अलग हो गया और अपनी लाजीविका चलाने लगा। एक दिन गाव गाव फिरने फिरते वह राजगृह में जा निकला वही भगवान भी विराजमान थे। इस समय भगवान की तपस्या का एक मास पूरा हुआ था और दूसरा दिन पारण का था। दूसरे दिन पारण के लिए भगवान आहार निर्मित्त खाना हुए। प्रभु को भिक्षाय आय हुए देख विजय सेठ ने श्रद्धा और सकार के साथ भगवान का निरवद्य आहार दान दिया। आहार लेते ही देवताओं ने वहाँ बनक रत्नादि पाँच द्रव्यों की वर्षा की यह समाचार विजयी की तरह मारे शहर में फैल गया। गोशाला ने भी यह बात सुनी। वह उसी समय भगवान को ढूँढता हुआ विजय सेठ के यहाँ आया और उक्त कथित पूर्ण वृत्त सचार्ई के साथ अपनी आँखों देखा। वह सोचने लगा कि 'यह भिक्षुक साधारण भिक्षुक के समान नहीं है, यह कोई पहुँचा हुआ महापुरुष है। अगर मैं भी इसका शिष्य हो जाऊँ तो कभी न कभी मेरा भी भाग्य उदय हो जायगा'। ऐसा मन में ठानकर वह गोशाला प्रभु के आया और भगवान के बिना 'हा' व 'ना' कहे ही वह

अपने को भगवान का शिष्य समझने लगा । उसी समय से वह अपनी आजीविका भिक्षावृत्ति से करने लगा ।

भगवान का दूसरा मामक्षमण का पारणा जान द थावक के यहा और तीसरा मुदर्शन सेठ के यहा हुआ उनम भी पूववत पाच द्रव्या की वर्षा देवताओ ने की ।

भगवान क चौथे मामक्षमण के पारणे का दिन कार्तिक शुक्ल पौर्णिमा नमीप आया । उस समय शक्ति हृदय गोशाला ने भगवान के ज्ञान की परीक्षा की । उसने भगवानसे पूछा 'भगवन्' आज घर घर म वार्षिक महात्मव बडे धूमधामसे मनाया जावेगा, अत आज मुझे भिक्षा में क्या मिटेगा ?' भगवान को तो अच्छा और बुरे का कोई भान न था । तथा साधु के लिये क्या अच्छा क्या बुरा सब त्रावरही है । जैसा भोजन मिला उसी में सताप चाहे रुखा हो चाहे सूखा हो मगर निरवद्य चाहिये । फिर भी भगवान ने उसे उत्तर दिया कि आज ता तुम्हे सडा भोजन मिलना चाहिये । भगवान के इन वचना का सुन गोशाला ने कुछ उपेक्षा की और भिक्षा के लिय चल दिया । दिन भर घूमने के बाद जब उसे किसीने भोजन न दिया तो शामके समय एक ग्रहस्थ ने उसे पुकारकर बानी सडा हुआ भोजन दिया भुकके मारे उसने उसी भोजन से सनोप पाया और भगवान के वचनोमें शका करने मन ही मन पछताने लगा ।

चौथ मामक्षमणके पूर्ण हो जाने पर जब गोशाला भिक्षाथ बस्तीमें गया हुआ था तब भगवानने वहासे बिहार करदिया और कोल्लाक नामक गाव में पधार गये । वहाँ जाकर उन्होने

नामक ग्राम्हण के यहा पारणा किया । वहाँ भी द्रव्यो की विपुल र्पा हुई जिसे देख वहा के लोग चकित हो गये ।

भिक्षा लेकर ज्यो ही गाशाला वहा आया तो उसे प्रभु न दिखे । वह व्याकुल हो उठा और प्रभु को ढूढता हुआ वही आ पहुचा जहा भगवान विराजमान थे । वह प्रभु से वाला भगवान! अब तो आप पर मेरी पूण श्रद्धा हो गई । अब तो म आपका शिष्यत्व अगीवार करता हू । आजसे आप मेरे धर्म गुरु हुए 'अब मैं आपको छोडकर वही न जाऊगा ।' इस प्रकार गोशाला भगवान का आपसे आप शिष्य बन गया ।

गोशाला भगवान का शिष्य तो बन गया था परन्तु वह सच्चा साधु न था । उसम स्वाथ, अक्षमता और क्रोध तो ज्यो के त्या ही मरे हुए थे । रास्त में विहार करते उसे एक दिन श्री पाण्डनाथ स्वामी के समुदायने चन्द्राचाम मुनी से भेंट ही गई । गोशाला न उह ढोगी और धूत बहकर सम्वाचित किया और उनसे वादविवाद करने लगा । विवाद बढ़ जाने के कारण क्रोध में आकर उनने प्रति चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा 'हे वेपधारियो । जाओ तुम्हारा उपाश्रय इसी समय जलकर भस्म हो जाय ।' इस पर उन साधुजा ने गोशाला का समभाया कि तू साधु है । साधु को कभी भी क्रोध न करना चाहिये । उसे तो क्षमता धारण करनी चाहिए । साधुओ को तो श्रोध, तोभ और मोह से सदा दूर रहना चाहिए । तेरे इस शाप से न ता हमका अथवा हमारे उपाश्रय को कुछ हा सकता है परन्तु तेरे व्यथ कर्म बधते हैं । पूर्वोपाजित कर्मों की निर्जरा के बदले तू तो उल्टे कम बाधता है यह साधु के लिए तो बिलकुल ही अनय का कारण है । यह सुन गोशाला वहाँ से चल दिया और शीघ्र भगवान के पास आ गया ।

नोट- धर्म के मुख्य चार प्रकार होते हैं १) दान (२) शील या (ब्रह्मचर्य) (३) तप और (४) भावना इनमें से प्रत्येक की महिमा शास्त्रकारों ने अलग-अलग बतलाई है। दान की अपूर्व महिमा का उल्लेख इस पाठ में किया गया है। या तो समार में अनेक प्रकार के दान धर्म किये जाते हैं परन्तु सुपात्र दान के बराबर कोई दान नहीं हो सकता। सुपात्र दान का देने और उसकी तृप्त आत्मा को शान्ति पहुँचाने में देवताआत्म को खुशी होनी है और उससे प्रभावित हो वे दानी के यहाँ द्रव्य वर्षा कर देते हैं। इस समय भी दान पुण्य की महिमा किसी सकट के आड़े आती है। फिर यदि महान योगी आत्माओं को देकर द्रव्य से भंडार भरपूर होवे इसमें अचम्भा ही क्या है।

राजदण्ड

ग्रिहार करते करते भगवान और गोशाला जब घोरक ग्राम में पहुँचे तो वहाँ कुछ राजकर्मचारी गुप्तरूपण चोरा का पता लगा रहे थे। उनके मन में साधु वेषधारी भगवान और गोशाला के प्रति शका उत्पन्न हुई। इसी सदेह में उन्होंने भगवान और गोशाला को पकड़ लिया। इन्हें पकड़कर वे लोग ग्राम के अधिकारी के पास ले गये। अधिकारी ने कर्मचारियों की बातों में आकर उहे चोर ही समझा और बिना किसी प्रकार की पूछताछ किये ही हुकम जारी कर दिया कि इनके हाथ पाव खूब जकड़कर बाघ के बिना सिद्धी के कुएँ में डाल दो। इतना हुकम मिलते ही सिपाहियों ने उहे निदयता से एक कुएँ में डबल दिया। भगवान पर तो असर नहीं

किंतु गोशाला

रोने लगा और अपने माय्य का कागन लगा। जब गोशाला बहुत ही व्याकुल हान लगा ना समताधारी भगवान यात्रे 'गाशाला ! तू विपत्तियों का विपत्ति त ममक, ये ता प्रकृति की विनूतियाँ है। जिस तरह विना वात्सा के टवटर के विजनी का प्रकाश नहीं होता, उसी तरह विपत्तियों के विना गुणों का पूरा - पूरा विकास नहीं हो पाता।' जब भगवान इस प्रकार जीवन में चमक और सुन्दरता लात वाली बात गाशाला से कह रहे थे उसी समय भगवान पार्श्वनाथ के श मन की दा माध्विया वहा से निकली। उन्होंने कुएँ म शब्द सुने और वहाँ जाकर देखा तो उन्हें भान हुआ कि इनने धार सस्ट में पडा हुआ माधु कितनी शक्ति के साथ दूमरे दु श्रित माधु को बोध दे रहा है इस प्रशान्त, प्रसन्नचित, धीर, वीर, गम्भीर तथा अपूर्व तेजस्वी महापुरुष की बातचीत से ऐसा प्रतीत होता है कि हीन ही शस्त्रानुसार वहीं ये अतिम तीर्थंकर न हा। क्योंकि मरणासन्न विपत्ति कालमें भी उनने चेहरे पर अनुपम मभीरता, प्रसन्नता, निभिकता और पूर्वोपाजित कर्मोंके कठोरसेकठार फलाका चुवानेकी उत्सुकता शरीरकी कमनीय कान्ति और असाधारण तेज ये मत्र गुण एक साथ यह बता रहे हैं कि ये महापुरुष अवश्य ही अतिम तीर्थंकर होना चाहिये।

इस प्रकार विचार कर के माध्विया श्रीधरही उम स्यान के अधिकारी के पास गई और उन्हें मारा वृत्तान्त कह सुनाया। अधिकारी ने सध्वियों की बातें सुन सिपाहियों का हुकम दिया कि श्रीधरही उन महापुरुषों को कुएँ में से निकाला। आज्ञा मिलनेही सिपाही लोग कुएँ के समीप पहुँचे और भगवान और गोशाला को उममें से निकाला। अधिकारी भी वहा आ पहुँचा और भगवान

को उक्त कथित मयगुण देखकर बहुत सज्जित हो बार बार
 पछानने लगा । अपने जिना विचारों अपराध के लिए वह बारबार
 भगवान् के क्षमा याचना करने लगा । दरणदर्ष्टि भावात् तै
 भी अपना हाथ ऊँचाकर अधिहारी और मित्राहिया का क्षमा
 प्रदान की और आगे की ओर विहार कर दिया ।

वहाँ से चलकर प्रभु हरिद्रु नामक गाव में आय और
 गाव के बाहर एक वृक्ष के नीचे ध्यान लगा दिया । वहाँ रात्रि
 का ठहरे हुए व्यापारिया ने शीतकाल के ठंड के कारण आग
 जला रखी थी । वह आग जलने जलते प्रभु के पाव के आसपास
 चारों ओर फर गई । गाशाला तो वहाँ में दूर भाग गया परन्तु
 भगवान् ज्या के लिये अपने ध्यान में निश्चल रहें रह । प्रातः
 काल होत ही जब भगवान् की ध्यान मुद्रा खुली तो गाशाला ने
 पुनः भगवान् की अवहत्तना की ओर कहा कि आप अपने पाव
 की ओर विहारये । प्रभु ने उत्तर दिया कि गाशाला ! मुझे
 इससे कुछ भी मताव नहीं बरों का खाता तो व्याज गमेत
 चुकाना ही पड़ेगा । य टल रही मरता इसलिए क्षमता के साथ
 इसे खुशी से भोगता ही साधु के लिए अधिक हितकर है ।'
 प्रभु की इस वाणी का मुन गाशाला भी उस दिन से प्रभु के
 समान क्षमताधारी बनने की भावना करने लगा । पश्चात् प्रभु
 ने वहाँ से भी विहार कर दिया ।

अनेकानेक कष्टों को सहन करते हुए गोशाला के साथ
 जब प्रभु विहार कर रहे थे तो एक दिन राह चलते चलते दा माग
 मिले । यहाँ गाशाला ने भगवान् से कहा 'प्रभु' कष्ट सहने सहते
 मरा जी ऊच गया । मैं चाहता हूँ कि आपका साथ न छोड़ूँ, पर
 भगवन ! मैं इन कठिन वेदान्तों को अधिक बाल तर्क

नहीं कर सकता। अतः मैं आपसे अब अलग होकर अपने भाग्य का निपटारा स्वयं करना चाहता हूँ। इस प्रकार चिदा माँगकर गोशाला प्रभु से अलग होकर दूरमे माग से चल दिया और कई तरह के नवीन काम उपार्जन किये जिमका वर्णन अन्यत्र ग्रन्थो में पाया जाता है।

अनाय देश

भगवान महावीर ने अपने चार चतुर्मास तो उक्त कथित स्थानों में जनेकानेक उपमर्गों को सहन करते हुए विताये। उन्होंने अपना पाचवा चतुर्मास भद्रिकापुर में, छठवा भद्रिकापुरी में, सातवा आलबिकापुरी में और आठवा चतुर्मास राज्यग्रह में किया। इन चतुर्मासों में भगवान पर शालामी नामक व्यतरी के उपमर्गों का छाड़कर कई उपमर्ग नहीं हुए।

इधर नानाप्रकार के कष्ट और अपमानों को सहता हुआ गोशाला प्रभु की खोज करने लगा। उसे अब मालूम हुआ कि बिना प्रभु के सत्सग के गति नहीं। एक समय जब प्रभु भद्रिकापुरी में पधारे ता गोशाला भी अकस्मात् प्रभु को ढूँढता हुआ वहाँ आ पहुँचा। प्रभु के पास आकर उसने अपने अपराधों की क्षमा मागी और प्रायना की 'प्रभु! मझे फिरसे अपनाइये, मैंने जैसा किया वैसा पाया, मेरे अपराध क्षमा कीजिये।' परम दयालु भगवान ने उसे फिर अपना लिया।

विचरते विचरते प्रभु महावीर ने अपना नववा चतुर्मास अनाय देश में करने का निश्चय किया और उस ओर रवाना हो

गये । अनाय दश का फाटफाट भी कहते थे । वहाँ के लोग बहुत क्रूर और घोर हिंसक थे । ताड़ना, नारना और भाति भाति करके पट्टाना ये तो उनके प्रति दिन के काम थे । ऐसे क्रूर और अविद्वक्त मनुष्यों का अपने आदेश स्वभाव में सीधा राह पर खाने व लिये और अन्न तमोंकी निजराके हतु ही भगवान् ने अपना नवमा चतुर्मास अनाय दश में किया ।

जब भगवान् अनाय दश (फाट दश) में पहुँचे तो वहाँ के लोगों ने कौतुकमय भाव से उन पर दृष्टि डालना और नदी गालियाँ देना शुरू कर दिया । उन पर कोई धुन पकना, कोई गुस्सा छुलना और कोई कोई ताताविध पीडा पहुँचाकर तुंगी मनाम था । भगवान् इन सब बातों का बिना दृष्ट आनन्द पूया रहने जाते थे । जब प्रभु किसी छहहर में ध्यान करने लिये जाते तो वहाँ के पडासी उन्हें धक्का मुक्का मारकर गिराल देते थे । इतनाही नहीं कही कही तो प्रभु को घण्टों और घूसों का भी स्वागत करना पड़ता था । नाना प्रकार के शारीरिक दण्ड देने समय जब वे लाग भगवान् से उनका परिचय पूछने और मोक्ष या ध्यान के कारण प्रभु के मुखसे वे कुछ नगुनने तबनो उनके श्राध की भीमान रहती । वे उन्हें डोंगी अथवा पक्का चौर ममक डाँ पर काड़ा की मार बरमान लगते और कही कही उन्हें जकडकर बांध भी देने थे । परन्तु भगवान् तो हम सब परीग्रहा का प्रसन्न बदन सहनकर लेते और कभी कोई छहहर मिल जाता तो वही ध्यान मग्न हो जाते थे । इस अनाय देश में कहाने की ठहमें और गर्मी के दिना में पूण तप्त चट्टाना पर कई दिनो तक ध्यान मग्न रहते दस मानव हृदय कपायमान हो जाता था । परन्तु भगवान् अपने यमों की

निजरा मह के समान अचल और साम्य भाव के साथ करने में कटिबद्ध थे। इस प्रकार विचरण करते करते अपरिमित कायिक और मानसिक कष्टों को प्रसन्नचित्त सहते सहते प्रभुने अपना नवमा चतुर्मास उमरी न्याट देश में बिता दिया। गोशालाने भी प्रभुके साथ साथ सभी कष्ट शक्ति अनुसार रहे। चतुर्मास पूरा हुआ जाने पर प्रभु ने उस अनाय देश से विहार कर दिया।

तेजो लेश्या और आजीविका सिद्धान्त

अनाय देश से भगवान महावीर कुम गाव में पधारे। उस गाव में वैशायन नाम का एक तपस्वी रहता था जो दो दो दिन के उपवास की तपस्या करता था और मूर्याभिमुख होकर ध्यान में स्थिर रहता था। उसके निग की बड़ी-जटाओं में जूए भी रंगने लगी थी। इस उग्र तपस्या के यथावत प्रभावसे उसे तेजोलेश्या की सिद्धि हा चुनी भी जिसके द्वारा अग्नि की ज्वालाए प्रगट होकर मनुष्य को भस्म कर सकती थी।

एक दिन गोशाला भी धूमते-धूमते वहा से निकला। उसने उस तपस्वी को देखकर तिरस्कार किया और उसकी तपस्या की धार निन्दा की और हसी उड़ाई। तबतो वह तपस्वी गोशाला के प्रति क्रुद्ध हाकर अपने को न सम्हाल सका और उसी समय उसने अपने तपोत्रल से तजालेश्या नामक तपोशक्ति गोशाला के विरुद्ध छोड़ी। उस अग्नि की भयकर ज्वालाए जब गोशाला के निकट पहुंचने लगी तब तो वह भयभीत हो वहा से भागा और शीघ्रता से शीघ्र भगवान महावीर के पास आकर चिल्लाने लगा 'भगवान्! मुझे बचाइये, मुझे बचाइये, मैं तो भस्म हुआ जाता हू इत्यादि।

यह देख प्रभु ने अपनी शान्ति मुद्रा के प्रभाव से उस ज्वाला के प्रति शांत हाजाने के लिये अपना खुला हाथ ऊँचा किया। प्रभु की ठडी दृष्टि के प्रभाव से वह ज्वाला उमी क्षण शांत हो गई और गोशाला भी भस्म हो जाने से बच गया।

भगवान की शान्त दृष्टि का यह चमत्कार देख उस तपस्वी का बहुत अचम्भा हुआ। वह शीघ्र भगवान के पास आया और अपनी तपस्या से भगवान की तपस्या को बचवनी पा उनके गुणों की प्रशंसा करने लगा। उसकी तप शक्ति का गव जाता रहा और उसके स्थान पर उसके हृदय में भगवान के प्रति भक्ति भाव जागृत हुआ। वह उगा समय से भगवान का भक्त हो गया।

उस तपस्वी के वहाँ से चले जाने के बाद गोशाला ने भगवान से पूछा 'भगवान! यह तेजा लेश्या किस प्रकार प्राप्त होती है?' तब बोले कि 'छै माह तक बले बले तप और सूर्य के सामुख आतापना करे, और पारणों के दिन एक मुठी उडद और चुल्नु भर पानी पीकर रहे ता तेजा लेश्या प्राप्त होती है।'

भगवान के इस प्रकार बचन सुन गोशाला भी उक्त तप करने में जुट गया। छै माह तक उक्त कथित तपस्या करके उसने तेजालेश्या प्राप्त कर ली। तेजो लेश्या प्राप्त होने के बाद उसने उसका दुरुपयोग करना आरम्भ किया अपने स्वभावानुसार जगह जगह वह मनुष्यों को भ्राति - भ्राति के दृष्ट पहुँचाने लगा। पश्चात् भगवान पार्श्वनाथ के सन्तानिक कुछ शिष्यों द्वारा उसने 'अष्टांग निमित्त' का ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब ता गोशाला को दो प्रचंड शक्तिया प्राप्त हो गई जिसके कारण वह अपने को जिनेश्वर कहने लगा।

कुछ दिन बाद वह फिर भगवान से अलग हो गया और इन दो सिद्धियों द्वारा वह वागो का 'आजीविक सिद्धान्त' का उपदेश देने लगा। अपनी सिद्धियों का प्रभाव दिखाकर वह अपने को चौबीसवा तीर्थकर कहने लगा। अत्र तो भोले-भाले लोग उमक माया जाल में फसने लगे और उनकी संख्या भी काफी तादाद में बढ़ गई।

इधर भगवान को केवल ज्ञान न होने के कारण मौनस्थ होकर ही रहना पड़ा, क्योंकि तीर्थकर जिना पूर्ण ज्ञान प्राप्त नियमोंपदेश ही नहीं देते। इसी समय जब भगवान छद्मस्थ अवस्था में होते थे तत्र आजीविक समाज की संख्या भगवान महावीर के अनुयायियों की अपेक्षा किञ्चित् अधिक हो गई। परन्तु उसका सिद्धान्त अपूर्ण और नितान्त निबल होने के कारण नाम शेष रह गये। इसीलिये आज आजीविक समाज का एक भी अनुयायी नजर नहीं आता।

नोट - अप्टाग निमित्त का ज्ञान प्रायः वह ज्ञान है जिसके आधार से जन्म-मरण, हानि लाभ, सुख-दुख आदि बातों को मनुष्य संस्कार करता सकता है।

भगमदेव द्वारा उपसर्गों की वर्णना और अनुपम-सत्पाग्रह

जातता और कीतराग भावसे अनेकानेक उपसर्गों को सहते हुए प्रमुपेडाणा ग्राम में पधारते। वहा पहुचकर एक उपवन में

भगवान् ध्यानस्थ हो गये और छि मासी तप का आराधन आरम्भ कर दिया ।

यहां पर जा उपमग भगवान् को हुए हैं उनका वणन करते हृदय कापता है, धर्म दहल जाता है, लेखनी रोती है, प्रकृति अस्तित्व शून्य बन जाती है, परन्तु भगवान् के अविचल वराम्ब, आदेश मयम, अद्भुत तपोबल उत्तम भावना आत्मकल्याण का निश्चल वत उन सम्पूर्ण उपसर्गों को तुपार पीडित और बेकाम कर देता है । यह है अविचल दृढता की सगीन कसौटी और अनुपम मत्याग्रह का नमूना ।'

जब प्रभु ध्यानस्थ हो छ मासी तप कर रहे थे उस समय देवराज इन्द्र ने अपनी सभा में भगवान् के मयम, तप और चरित्र बल की बहुत प्रसशा की । यह सुनकर सभा का एक सगम नाम का देव प्रभु के विरुद्ध ईर्षालु हो गया । वह सोचने लगा कि 'देव सभा में मृत्यु लोक क शरीरधारी आत्मा की इतनी प्रसशा कदापि वाञ्छनीय नहीं । मैं अभी वहा जाता हू और महावीर को हर तरह से उसके तप, सयम, शील और मदाचार में परास्त कर देवराज इन्द्र के इस कथन का खडन करता हू जिससे उह भी किसी की मिथ्या प्रसशा करने का देव सभा में साहस न हो ।' इस प्रकार गदे विचार मन में आते ही भगवान् को परास्त करने के हेतु वह सगमदेव वहा आया जहा प्रभु ध्यानस्थ तपस्या कर रहे थे ।

प्रभु के शात अचल निष्काम और लोकापकारी शरीर को देखकर सगमका ईर्षाभाव दुगना होगया । उसीक्षण उसने प्रभु को ध्यान से डिगाने के लिये अपनी भाया से घटाटोप घूलिकी बहुत

देर तरु कडी बर्षा की । चारो तरफ पृथ्वी धूलिसे भर गई, सम्पूर्ण वायुमण्डल रजमिश्रित हो गया । सहस्रो जीवधारी प्राण रहित होगये और भगवानका शरीरभी धूलिसे ढक गया । चहुओर प्रलयकारी भयानक दृश्य फैल गया । परन्तु भगवान् पूर्ववत् भुमेरु के समान अविचल तथा महासागर के मद्दश गभीरता को धारण किये, बिना गतिमान हुए ज्यो वे त्यो ध्यानस्थ खडे रहे ।

यह देख सगम और भी क्रोधित हुआ और अपनी उग्र माया से वहाँ उसने भयकर विषैला चीटियों को उत्पन्न किया । उन चीटियां से प्रभु के शरीर के प्रत्येक भाग का बहुत निदयता से कटवाया । ऐसी निदयता का देख कलेजा थरथरा जाता है, धय पलायन कर जाता है । परन्तु आत्म सयमी, दृढ सकल्यी, तपानिधी भगवान्, जिह् शरीर की कुछ भा परग्राह नहीं है, ऐसे भयकर आतंक म भी पूण निश्चल, निर्भीक और अपूर्व शान्तता धारण किय हुए ध्यानमग्न थे ।

ऐसी अवस्था में प्रभु को देख सगम का पारा और भी बढ गया । उसने तीसरी बार विषैले सप, जिच्छू, गोहरे आदि महा भयकर जन्तुओ को उत्पन्न कर प्रभु के शरीर पर छोडा । उन जन्तुओ ने भी अपने मन की अच्छी तरह कर ली । परन्तु जहा चण्डकौशिक सरीखे विषधर से भी प्रभु का कुछ न बिगड सका तो ये मायावी विषले जन्तु जिचारे क्या कर सकते थे । इतना सब कुछ होने पर भी प्रभु के मन में लेशमात्र भी द्वेष पैदा न हुआ । वे तो अपने आत्म बल से सभी उपसर्गों को शान्तता पूर्वक सहते चले गये । इस प्रकार पूरे छँ महीने तक सगम ने प्रभु के शरीर पर अनेक प्रकार की आपत्तियां ढाईं । जिसे पढकर पापाण हृदय भी चूर-चूर हो जाता है ।

प्रभु के उत्कट तपोबल के मामने दब होकर भी जब सगम की राक्षसी त्रियाए और प्रयत्न सब बिकम हो चके तबतो उसने मनुशरीर के बिल्कुल अनुमूल काम वासनाके प्रखरतम प्रयागोका धार करना प्रारम्भ किया । उसने अपनी माया से चारा और यमन ऋतु की रचना कर दी । फिर नाना प्रकारके कामार्त्तजक पदार्थोंसे उस वनम्यलका परिपूरित कर दिया । पश्चात् सगमन कामकलाआ म पारगत, रूपलावण्य में अनुपम और पूण यावन सम्पन्न कामिनियो का एकत्रित कर वहा एक बडी मछया म उपस्थित कर दिया ।

अब ता भगवान के आस पास उस फूली फनी वमन्त में चचल और दीष नयनोवाली, यौवनके अभिमान में माती, पतली कमर और लबे केम वाली, और तत्क्षण कामोद्दीपन करने वाली युवतिया अपने हाव भावसे प्रभुका माहने लगी । कोई गाती हुई, कोई बजाती हुई, कोई-काई नृत्य करती हुई, कोई मनचली कामिनी गाइ आलिंगन कर प्रभुकी कामवासनाको जागृत करने लगी । कोई-काई गल बहियां डालकर मधुर-मधुर बातें कह-कह कर प्रभु को फुसलाने लगी । परन्तु इन सबके हाव, भाव, कटाक्ष और कारनामे सब फुसकी राख के समान बकाम हुए । इन बातों का प्रभु पर लेशमात्र भी अमर न हुआ । वे ना अपने ध्यान में हिमाचल के समान अटल के अटल ही बने रहे ।

अभी तक तो उस सगम देव की सम्पूण शक्तियो का प्रभु के आगे भारी अपमान हुआ परन्तु उसकी डाहमें नमी न हुई । सम्पूण-तया हर एक प्रयोगों में परास्त हो अब वह चिंतातुर हो सांचने लगा कि "छ माह हाते आये मेरी हार पर हार ही होनी गई । मैं स्वर्ग

म जाकर अत्र मुठ बंसे दिशाऊगा । वहा मे ता म घमड पूवन इन्द्र महराज क बचन का गहटा करने आया था, परंतु यहा तो अनेका सार मुझे पूर्ण ह्वाण हाना पटा । पूण छै माम के दमन-चक्र क राद भी मुझे यहा स निलज्ज और निगण होकर स्थग में जाना पडगा । यह ता बडे गजरा मनुष्य है । अबकी बार एक और परीक्षा करता हूँ ।” यह कहकर वह सगमदेव वहांमे चला ।

इगवार भगवानकी छ माही तपस्या पूण हुई । फिर भगवान आहार लेने का गाकुल ग्राम म पधारे । उम पाममें जहा-जहा प्रभु उम समय जाहार लेने गये वहा वहां मगम ने निदोय आहार को अपनी माया से दोषयुक्त कर दिया । तत्र तो बिना आहार पानी लिये ही प्रभु अपनी पूववत शान्तिमें स्थिर रह । सगम कदाचित् यह समभता था कि छ महीने तक जखट तपस्या करके अब इन्हें आहार न मिलेगा तो ये अवश्य डिगमिगा जावेगे और इनका क्रोध सदोप्त हा जायगा । परन्तु भगवान तो अन्तत खीर ही थे, उन्होंने उसन प्रति कुछ भी द्वेष न किया । तब तो अनुलनीय सहनशक्ति अनुपम साधुवृत्ति और अटल विश्चय और उत्कट मत्याग्रह देख सगमका हृदय चूर-चूर हा गया । अत्र इन्द्र द्वारा प्रसजित भगवान के प्रति उसकी भक्ति जागत हुई । यह प्रभु के पास आया और अपने इतने बडे और भयकर अपराधा की क्षमा याचना करने लगा प्रभुने उसे अपनी शांत दृष्टिमे क्षमा प्रदान की । तदनन्तर सगम अपने कृत अपराधों पर लज्जित हा स्वर्ग को चला गया ।

इधर सगम के चठे जाने पर भगवान ने उसी गाकुल ग्राम में एक गोपिका के घर आहार ग्रहण किया । इस प्रकार कठिन से कठिन तपस्वियो, तेजस्वियो और शूरवीरो के मन को क्षण भर में

चलायमान कर देने का उपसर्ग और सबटा का शान्तता पूर्वक सहन कर और अपने अविचल मत्य द्वारा उन पर विजय प्राप्त कर प्रभु ने वहाँ से विहार कर दिया ।

नोट— इस पाठ से मत्स्याग्रह की कड़ी परीक्षा का अनमान होता है । इसमें जा उत्तीर्ण होने हैं उनके आगे ससार की भारी से भारी शक्तियाँ भुक्त जाती हैं और अन्त में विजय श्री उनकी दासी बन जाती है । यह है सच्चे धीरो की वीरता की उज्ज्वल चमक का जीवित उदाहरण ।

भगवानका अभिग्रह और चन्दनवाला

इस प्रकार विचरते हुए भगवान ने अपना ग्यारहवाँ चातुर्मास वशाती में किया और वहाँ से कई स्थानों का अपने चरण कमलों द्वारा पवित्र करते हुए काशाम्बी में पधार ।

उस समय वहाँ राजा शतानीक राज्य करता था उसकी रानी मृगावती थी । उसी नगरी में घनावह नाम का एक सेठ रहता था, जिसकी मूला नाम की कलहवारिणी ईर्षालु स्त्री थी ।

इस नगरी में आकर प्रभु ने बड़ा ही बड़ा अभिग्रह धारण किया, जिसमें कई बातों का समावेश होता है उन्होंने निश्चय किया कि अब तो (१) आहार किसी राजकन्या के हाथ से ग्रहण करना (२) वह राजकन्या विकी हुई होना (३) उसके पैरा में बेटिया पड़ी हो (४) उसका सिर मूडा हुआ हो (५) जो तीन दिन के उपवास से मुक्त हो (६) उडद के बाकुले आहार में देवे (७)

बाकुले सूप में ही (८) जिस समय यह कन्या आहार दे तो उसका एक पात्र देहली के बाहर और एक भीतर हो और (९) जिसकी आंखों से अश्रुधारा बहती हो ।

इस प्रकार अभिग्रह धारण कर भगवान प्रतिदिन कोशाम्बी नगरी में जाते परन्तु उक्त प्रकार की योजना कहीं भी प्राप्त न होती । ऐसा करते-करते पूण चार माह व्यतीत हो गये परन्तु कहीं भी अपने अभिग्रह अनुमार भोजन प्राप्त नहीं हुआ । यह बात बस्ती के राजा, मन्त्री वगैरह को मालूम हुई तब तो नगर में भारी चिंता फैल गई । बड़े-ज्यातिपियो ने भी भगवान के अभिग्रह को मालूम करने का प्रयत्न किया मगर वे सफल न हुए । चार मास पूण हा जाने पर भी अभिग्रह सफल न हुआ । जब तब दूसरी ओर क्या-क्या घटना घटी है उसका सफ़िक्त विवरण इसप्रकार है—

उस समय नगरी चम्पावती में राजा दधिवाहन राज्य करते थे । उनकी धारिणी नाम की पतिव्रता रानी थी । उनकी महाशील-वती वसुमति नाम की कन्या थी । ये तीनोंही प्राणी पूण धर्मात्मा थे, रात दिन जिनेश्वर पूजन में बिताते और मोक्ष के माग का साधन करते थे । एक दिन अचानक ही उन पर आपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा । कोशाम्बी का राजा शतानीक किसी कारण चम्पावती के राजा दधिवाहन से श्रुद्ध हो गया । वह अपना सैन्य - दल लेकर दधिवाहन पर चढ़ आया । युद्ध होने पर दधिवाहन हार गया और नगर छोड़कर भाग निकला । शतानीक ने राजधानी में प्रवेश कर लूट मचा दी । उसी लूट में एक सुभट दधिवाहन की पतिव्रता रानी धारिणी और कन्या वसुमति को उड़ा ले गया रान्ने में उस सुभटने रानी धारिणी के प्रति अपनी दुईच्छा प्रगट की । रानी ने

उमे वहीँ खूब फटकारा और उसका तिरस्कार बिधा । फिर भी वह मुभट रानी से अनेक प्रकार की बुचेष्टाएँ करता ही जाता । तब तो रानी ने अपनी लाज और धर्म का उच्चाते के हेतु तुरन्त वनगन व्रत धारण कर लिया और अपने सिर के लम्बे बेशो द्वारा आत्मघात कर प्राण छोड दिया ।

यह हाल देख वसुमति घबरा गई और चिल्ला चिल्लाकर रोने लगी । उसके बरुण वन्दन से मुभट का दिल पिघल गया और उसने मागूहीन उस कन्या को पालन का अभिवचन देकर अपनी पुत्री एक बहिन बनाकर घर ले आया ।

रूप और लावण्य से परिपूण उम कन्या के माथ में मुभट को पर में आया देख उसकी स्त्री शोध से ज्वलित हो गई और उसने उस मुभट को खूब ही उसटे हाथ लेना शुरु किया । तब तो वह वसुमति के प्रति अपने सब अभिवचन भूल गया और वसुमति को बाजार में लाकर एक वेश्या का बेच डाला । वसुमति तो पूण शीलवती थी, वह अपने का वेश्या के हाथ बची समझ घबराने लगी और अपने भाग्य का कोसने लगी, क्योकि वेश्या के यहा उसके शील की रक्षा होना बिलकुल असम्भव था । वह मन ही मन नववार मंत्र का जाप जपने लगी और प्रभु से प्राथना करने लगी कि "हे प्रभु ! अब तो मेरे शील की रक्षा के सहायक आप हैं रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।"

जब वसुमति उस वेश्या के साथ भगवान का स्मरण करती हुई जा रही थी उसी समय बीच में ही कुछ देवताओ ने वन्दरा का रूप धारणकर उस वेश्या को बुरी तरह नोच परोच

तब तो यह सौदा अपमान का समझ उम वेश्या न प्रगुमति को उस मुभट के पास लाकर उसे फिर से मौप दिया और अपने पैंग वापिस ले घर चली गई। बाद में उस मुभट ने उम काया को घनावह सेठ को बेची। घनावह सेठ को कोई मता न थी इसलिये उसने बड़े प्रेम से प्रगुमति का अपनी काया मानकर घर ले आया। और उसका नाम चन्दनवाला रखवा ज्योही चन्दनवाला सेठ घनावह के साथ घर में आई त्योंही उसे देख सेठ की गृहणी मूला के मन में ईर्ष्या पैदा होने लगी। एक दिन मूला वही बाहर गई हुई थी कि सेठजी घर में आय और पैर धाने को पानी मागा। मूला घर में न थी इसलिये चन्दनवाला ने अपने पिता से कहा "पिताजी! माताजी घर में नहीं हैं मैं स्नान कर रही हूँ, आप यही पधार ज वे तो मैं ही आपके पाव धुला देऊँ" यह सुन सेठ चन्दनवाला के पास गया। चन्दनवाला सेठजी के पाव पर पानी डालने लगी। इतने में ही मूला वहाँ आ पहुँची और चन्दनवाला का यह कार्य देख मन ही मन क्रोधित हो गई। अब तो उसकी ईर्ष्या चन्दनवाला के प्रति और भी बढ़ गई।

फिर एक दिन जब सेठजी बाहर गाय गये थे, तब वहाँ बहाना डूढ़कर मूला चन्दनवाला पर क्रोधित हो गई। उसने तुरत एक नाई का बुनाकर उसका सिर मुडवा दिया और लाहार द्वारा उमके पैरो में बेड़ी डलवाकर अपने मकान की एक कोठरी में उसे बन्द कर दिया। वहाँ चन्दनवाला ने तेले अर्थात् तीन दिन के उपवास की तपस्या धारण कर ली। तीसरे दिन जब सेठजी घर आये तो देखा कि मूला तो अपनी माता के घर चली गई और चन्दनवाला का पता नहीं। उन्होंने पडासियों से बहुतेरी पूछताछ

की। तब एक पड़ोसी बोला कि 'गडबड मचाने के पहले अपना घर मनी भानि देव लो।' सेठजी ने उसकी बात मान ली और घर की सब कोठरिया देखना आरम्भ कर दिया। देखते-देखते एक कोठरी में चन्दनवाला को बेड़ी से जकड़ी हुई पाया। सेठ उमी समय चन्दनवाला को बाहर लाया और सामनेकी छपौड़ीपर लाकर नजदीक सूप में पड़े हुए उहद के बाकुले उमके सामन धर दिये और उमकी बेड़ी कटवाने के लिए लाहार बुलाने चले गये।

इस दिन चन्दनवाला का तेले का पारणा था। उमके मन में यह भावना उत्पन्न हो रही थी कि यदि महा बाई सन्त मुनि-राज आ जावे तो उन्हें कुछ आहार कराने पारणा करूँ। इतने में ही भगवान महावीर पारणे के हेतु पधारे। अपने अभिग्रह का सफस होते पूण पाच माह पञ्चीम दिन हो गय और ज्यों ही वे चन्दनवाला के महा पहुँचे ता वहा अभिग्रह की एक बात का छाड शेष सब बातें उन्हें मिल गयी, परन्तु वह एक बात न जाने के कारण वे वहा से लोट पडे। यह देख चन्दनवाला अपने का धिक्कारनी हुई रो पडी और उसकी आँखोंसे अश्रुधारा बह गिस्ली, वन यही एक बात होने को थी कि भगवान की दृष्टि पुन उस पर पडी। भगवान ने अपने अभिग्रह की कुल सामग्री एक ही स्थान में पाकर उन उहद के बाकुलो से पारणा किया। वम फिर क्या था, देव दु दु भि बजने लगी और चन्दनवाला की लाहे की बेड़ी स्वण की होकर आपसे आप टूट पडी। देवो ने भी घनावह के घर पचद्रव्यो और रत्नो की वर्षा की। भगवान ने चन्दनवाला के घर पारणा कर जयत्र विहार कर दिया। आगे जब भगवान का वैवल ज्ञान हुआ तब चन्दनवाला ने भी दीक्षा ग्रहण करली और अपना शेष जीवन आत्मसंशोधन में लगाकर मुक्ति का माग पकड लिया ॥

भगवानका बारवा चातुर्मास और अन्तिम - उपसर्ग

भगवान महावीर उपसर्गों के ऊपर उपसर्गों की इस प्रकार सहते-सहते और कठिन से कठिन तपस्या करते हुए यथा नगरी में पधारे। अग्निहारी ब्राह्मणों की धर्मशालामें ठहरकर अपना बारवा चतुर्मास वही बिना। यहा आर मन्हिने की तपस्या कर वर्षा बीत जाने पर पारणा किया। और पणमानी गाव की ओर बिहार कर दिया।

वहा आरर वस्ती के निकटवर्ती वन में प्रभु एक बूझ के नीचे ध्यानस्थ हो गये। अपने बैलो को चराता हुआ एक ग्वाला वहा आ निकला और अपने बला का वही चरत हुए छोड यह थोडी देर के लिये अयत्र चला गया। बैल चरते-चरते दूर चले गये, इतने मे ही यह ग्वाला वहा आया और वहा बला को न देखा। वह ध्यानस्थ प्रभु से पूछने लगा कि 'मेरे बल वहां गये?' मगर प्रभु से कुछ उत्तर न पाकर वह बैलो का ढूढने के लिए जगल में इधर उधर भटकने लगा। जब खूब हैरान हो गया तब वह ग्वाला पुन प्रभु के निकट आया और वहा देखा तो बैल चर रहे थे। यह देख उस ग्वाले को एक दम शोध आ गया। वह सोचने लगा कि हो न हो यह मनुष्य कोई ठग है। इसे उचित दण्ड देना चाहिये। इतना विचार मन में आते ही उसने लकडी की दो खिली अपनी कुल्हाडी से बनाई और प्रभु के दोनों कानो में ठोक दी। उस समय प्रभु को अतुलनीय वेदना अवश्य हुई होगी परन्तु कर्मों का बदला

परन्तु पशुबल सदैव मुहू की खाता रहा । प्रतिपक्षियो पर प्रभु की ओर से तनिक भी बार न हुआ तिसपर भी विजयथी ने अन्त में भगवान को ही बरा और शत्रुओं के पैर उखड गये । प्रभु का यह दिव्य चरित्र मूक भाव से हमारे सामने आत्मबल का एक उत्तम आदर्श रचता है ।

प्रभुने जितना तप किया वह प्रतिज्ञा-पूर्वक ही किया । ध्यान मोन, आसन, समाधि और आत्म चिन्तन कर अन्त में शूल ध्यानरूपी जाज्वल्यमान अग्नि में उन्होंने अपने चार आत्माका डुबाने वाले घनघाति (ज्ञाना बरणी, दर्शना बरणी, मोहनीय और अन्तराय) कर्मों को भस्म कर दिया ।

अब जिस ज्ञान के अभाव से दुनिया अघबार म गोता खा रही है, जिस ज्ञान के अभाव में जनता मिथ्या रूढियो के बशीमूत ससार में अनथ कर रही है, जिस ज्ञान के न होने से लोग ममत्व, माया और तृष्णा के गुलाम बन रहे हैं, जिस ज्ञान के अभाव में सजल निजला का अयायपूर्ण हनन कर रहे हैं, जिस ज्ञान से रहित ससार एक क्लेश कदा गृह और बबंरता का स्थान बन रहा है और जिस ज्ञान के अभाव में आत्मा अपने निज गुणा को भूल के पर स्वभाव में रत होकर कभी शांति नहीं पाती, इसी ज्ञान की प्राप्ति के लिए भगवान महावीर ने कठिनसे कठिन तपश्चर्या की, मरणातक कष्टों को भी अपूव शांति के साथ सहन किया और उत्तमोत्तम भावना से चार उबत कथित घघानति कर्मोंको समूल नष्ट कर जम्बुक ग्राम के पाम, रजुवालिवा नदीके तीर, शालिवृक्ष के नीचे छट्टतपयुक्त गोदुह आसन लगाये, शूल ध्यान में मग्न बैसाख

सुदी १० के दिन विजय नामक शुभ मूहूर्त में सब लोकालोक के सर्वांग द्रव्य, क्षेत्रपाल और भाव को जानने वाला वैबल्य ज्ञान प्राप्त किया। भगवान को यह सबज्ञता प्राप्त होते ही सत्तार भर में आनन्द छा गया, देवी देवता और इन्द्रादि ने महामहात्म्य मनाना आरम्भ कर दिया। पुण्यवृष्टि हाने लगी और धार्मिक विथछलता की भट्टी में शांति का संचार होने लगा ॥

भगवान महावीर का समवसरण

केवल ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् वैसाख सुदी ग्यारस को भगवान महावीर अपापा नगरी के महासेन उद्यान में पधारे। वहा इन्द्रमहाराज के आदेशानुसार देवताओं ने चादी, सोना और रत्नमय तीन गड, चारह दरवाजों से युक्त, उत्कृष्ट सिंहासन और अगाकादि वृक्षों से पूरित दिव्य समवसरणकी रचना की। इस समवसरण अर्थात् ध्यायान मण्डप की अनुपम शोभा का वर्णन तथा उसके प्रभाव का उल्लेख शास्त्रों में बहुत ही विस्तारपूर्वक पाया जाता है। उनमें से कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं कि -

- (१) उस समवसरण में सब ही जाति और वर्णों के मनुष्य भेद भावा को छोड़कर एक साथ ही उपदेश सुनने का आतुर हो रहे थे।
- (२) प्रभु के आत्मज्ञान का अलौकिक प्रकाश केवल मनुष्य मात्र तक सीमित न था, बरन् पशुपक्षियों एवं प्राणीमात्र का पारलौकिक सुख का अनुभव कराने वाला था।

- (३) उस व्याख्यान मण्डप में हिंसक से हिंसक पशु-पक्षी भी अपनी क्रूरता को तजकर, आत्म-वत्याण के हेतु शान्तता पूर्वक विराजमान थे ।
- (४) उस मण्डप में जो-जो प्राणिमात्र आवर बठे थे उन सभी के हृदय में क्षमा, शांति बरुणा और समता के भाव परिपूर्ण सुशाभित थे ।
- (५) उम सभा मण्डप में यद्यपि सब ही प्रकार के प्राणी थे तिस पर भी भगवान की दिव्य आत्मा का तेज सबत्र इस प्रकार छाया हुआ था कि चहुँओर शांति ही शांति विराज रही थी ।
- (६) प्रभु के उपदेश की भाषा उस समय की लोक भाषा अर्द्ध भाषी थी । परन्तु प्रभु के आत्म तेज के प्रभाव से वहा बैठे हुए सब ही प्राणी अपनी-अपनी भाषा में प्रभु के उपदेश द्वारा अदृश्य आनन्द का अनुभव कर रहे थे ।
- (७) उस व्याख्यान मण्डप की रचना इतनी विचित्र थी कि उसके अन्दर किसी भी स्थान पर बैठा हुआ प्राणी प्रभु के प्रसन्न मुख मडल को विना किसी कठिनाई के देख सकता था ।

ऐसे दिव्य अलौकिक समसवरण की रचना के पश्चात् तीर्थों को नमस्कार कर, अपने केवल ज्ञान द्वारा जगत को शांति देने वाला, सत्त्व सदेश पहुचाने के हेतु प्रभु महावीर उच्च जन्तुगिषा - रत्नजडित सिंहासन पर विराजमान हुए ।

उपदेश प्रदान

जैन शास्त्रों में यह यान्त्रिक विरोध रूप से उपलब्ध है कि तीर्थंकर बिना कबल ज्ञान अर्थात् सवयता प्राप्त त्रिये किमी प्रकार का धर्मोपदेश ही नहीं करते। यही कारण है कि जैन धर्म गवयता का धर्म कहनाता है जहाँ परस्पर विरोधाभासका बड़ी आभासतर भी नद्रीमिसता। केवल ज्ञान के पूव भगवान् महावीर ने भी बठार से बठोरकष्ट महन करते हुए प्राय मौन वृत को धारण कर रपछा था।

कवल ज्ञान प्राप्त करके जगत के जीवों को दुग्धित देखकर भगवान् ने अब उस दिव्य सत्य-उपदेश को जगत में प्रचारित करना चाहा जिससे प्राणि मात्र को पूव मुख और शांति प्राप्त हा। उन्होने लोक बन्धाण के लिए गमयानुसार अपन रायप्रम को बदलन म ही सच्ची विश्वांतिना अनुभव किया और परापकारका ही जिसमें जीवमात्रा का समावेश हो जाता है-एने आत्मापकार परोपकार प्रजातत्रवा जिनमें जीव मात्रो का समावेश हो जाता है - के समान अपनाया।

इस समय भारत भर में हिंसा ही हिंसा का राज्य हो रहा था, स्वार्थी सागा ने वेदों का अर्थ ही बदल दिया था, जहा दग्ग वहाँ धर्म के नाम पर यज्ञादि क्रियाओं में मायो जीवों का हनन हो रहा था, मारी पृथ्वी मूक प्राणियों के रक्त से दूषित हो रही थी, स्वाधि-यों ने अपने मनोरथों की सिद्धि में सैकड़ों राजा महाराजाओं का धर्म का नाम लेकर अधमकी ओर अग्रसर कर दिया था। सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था, वही अवसमेष यज्ञों में सहस्रों घोड़ों का बलिदान

होता था, वही गोमेघ यज्ञ में लाखों गीए होम दी जाती थी और वही-वही नरमेघ यज्ञ में सैकड़ों मनुष्य व वच्चों का बलिदान होता था, और इसे ही सच्चा घम बतलाया जाता था ।

भगवान महावीर अपने ज्ञान द्वारा एव अमोघ शक्ति से इस हृदय विदारक अवस्था को समूल नष्ट करनेका उपदेश देना आरम्भ किया । उन्होंने बतलाया कि खून का दाग खून से ही धोने से माफ नहीं हो सकता, इसी प्रकार अधम को मिटाने के लिये अधम ही करन से घम बढ़ापि नहीं हो सकता । उन्होंने दर्शाया कि सुख और शान्ति का भाग वही हो सकता है जिसे प्राणी मात्र चाहें । प्राणी मात्र को, चाहे छाटा हो चाहे बड़ा हो, अमीर हो या गरीब हो, पशु हो या पक्षी हो, कीड़ा हो या पतंगा हो सबको अपनी अपनी जान प्यारी है और सब ही अपनी-अपनी अग्रि तक जीवित रहना चाहते हैं । इसी अवस्था को कायम करने और भारत व्यापी बनाने में भगवान महावीर ने "अहिंसा परमो धर्म" का दिव्य उपदेश अपनी गगन भेदी बूलद आवाज से देना आरम्भ कर दिया । और जीव मात्रा के लिये प्रजातन्त्रवाद की उत्तम नींव डाली जो आजकल अणत मनुष्य मात्र तक सीमित रह गई है । भगवान की ऐसी अनोखी करुणा, क्षमता, दया और आत्मा के अमर धर्म एव सत्त्व के वितरण करने की चर्चा को देख मुन और अनुभव कर जन समुदाय, उनकी शरण में आकर अपने जीवन को 'सत्य शिवम सुन्दर' के अलौकिक प्रकाश से प्रकाशित करने को, उमड पडा ।

सबज्ञ भगवान ने, बिना जाति भेद ऊँच नीच, पशु-पक्षी सब ही शरणागत प्राणियों को सत्य का सतस्वरूप बतलाया जिसका

एक ही दर्शन का और वह यह था कि दुनिया के पर पर और
 हर हर मन्त्री जगहों में मरने का मुझ मरने पहुँचे । मरने के दुष्टि
 शक्ति का ही मुझीयन छाया में परमात्म का मरने उरभोग कर ।
 एक ही और करेगा, दु ग और दर्द और, और विरोध का दुष्टि मे
 विरक्ति ही । स्वर्ग मन्त्र अज्ञान का अष्टक जगत् मरने धना
 रहे । रत्न का अष्टक रत्न प्राणी मात्र के हृदय में बसता है ।
 पर पर में परीयकार की प्रकृति ही । जगत् मन्त्रिण प्रम की
 रचना है, और अन्त में साग एकमात्र आत्मा जगत् के मुद्र
 रत्न कर मोग मार्ग की ओर अग्रसर होने वाले आये ।

मन्त्रान्त के एक मन्त्र-मन्त्र का, मन्त्रान्त मन्त्र मन्त्र पर
 बड़ा भगवत् पदा । उद्वेग अज्ञान के विषय विषय शक्तियों का निष्-
 फल कर मन्त्र का मन्त्र रत्न का अन्त का । बस इतना
 होते हैं मन्त्र-मन्त्रान्त मन्त्र-मन्त्र की भावनाएँ मिलने मन्त्री । मन्त्र
 मात्र प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थान पान सगा । अमातृपिक अत्या-
 चारी का प्रवाह वेग से साग जाने सगा । मन्त्र के नाम पर साक्षा
 पदुमा के रत्न में पृथ्वी का रचित जाना एकदम एक सगा । जगत्
 मन्त्र पृथिवी शक्तियों का प्रायः अन्त ही सगा । मन्त्रान्त का
 चारी और मुद्र मन्त्र प्रमाणित हुआ । जगत् का स्वागत धर
 पर जान सगा । मन्त्रान्त और मन्त्र-मन्त्रान्त की शक्ति पन्थी ।
 जगत् में साग और साक्षा की प्रकृति बड़ी । सागा ने एक मन्त्र
 और अमातृपिक मन्त्रान्त मन्त्रान्तों को लेकर प्राणी सागा
 के एक नवीन प्रजापति मन्त्र में पदपत्त किया ।

मन्त्रान्त महावीर ने कई नवीन वाग मन्त्री बजाई, परन्तु
 मुझे एक ही पितृ-प्राणियों के पून लीय कर। द्वारा मन्त्रिण अज्ञान प्रम

वा ही तत्कालीन द्रव्य, काल क्षेत्र और भावानुसार सत्य सदेश भिन्न भिन्न दृष्टि कोणोंसे समझाया। उन्होंने अपने आदर्श उदाहरण से बतलाया कि घृणा ही सबसे अधिक त्याज्य है घृणा ही सब नाश का कारण है। घृणा की नीव हिंसा है जो सब पापों का मूल है। इसलिये किसी से घृणा मत करो। ससार में घृणित वह है जो घृणा करता है क्योंकि उसका हृदय घृणा से घृणित है और उसी के बशीमूत वह ससार में दुःख बलेश और अशांति की बाढ़ ले आता है। चेतन आत्मा प्राणी मात्र में विद्यमान है और वह सब ही अन्त करणों में एकसा प्रकाश करती है। इसीलिये किसी के प्रति घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है।

भगवान का आदर्श सिद्धान्त क्षणिक नहीं था, वे परिणाम दर्शाते थे। उनकी धार्मिक भावना में लोक कल्याण का हेतु था। जिसकी नीव केवल सत्य, विशुद्ध प्रेम, निस्वार्थ भावना और अहिंसा के सुदृढ़ पाया पर रखी हुई थी।

भगवान महावीर के सिद्धान्त में आत्मज्ञान, अध्यात्मज्ञान, तत्वज्ञान विज्ञान और स्याद्वाद का पूरा समावेश होने के कारण ही उन्हें परिपूर्ण सफलता मिली और जैन धर्म पुनः पूर्णरूप से विकसित होने लगा। बड़े बड़े राजा महाराजा एवं धुरधुर विद्वान् वेदान्त वे ज्ञाता भगवान के अहिंसा रूपी ऋडे के नीचे आ गये, और गोशाला का चलाया हुआ 'आजीविक' और बुद्ध का 'बौद्ध धर्म' जो भगवान महावीर का केवल ज्ञान प्राप्त होने के पहले बहुत वेग से प्रचलित हो चुके थे "अहिंसा परमो धर्म" का सिद्धान्त पालन करते हुए भी आत्मज्ञान शून्य होने के कारण शीघ्र उदय हाकर अस्त हो गये या उनका रूपान्तर हो गया।

परन्तु जन धर्म की तीव्र अभेद विद के मद्दुष्ट मद्दुष्ट होने के कारण धर्म तब धर्मों में अपना उन्मासन गृहण किंच हूमे अपने सिद्धान्त का मद्दुष्ट विश्वम्पारी बना रही है । मद्दु जन धर्म की अहिंसा और आत्मबल का साथ विस्तार ही है जिनके समार की पार्थिव महान शक्ति का सामना महात्मा गांधी व नेत्रण में भारत देश में हिंसा और कर रहा है । जिनके आधार पर ही उदार की सद ही भारी शक्ति 'नि-शस्त्रीकरण' व सिद्धान्त का प्रयोग के विश्व शांति प्रदाना चाहती है । 'अहिंसा' आत्मा का निर मुण होने के कारण महात्मा शक्तिशाली शत्रु है साथ व आधार पर जिनका प्रभुत्व समार में कभी नष्ट नहीं हो सकता ।



भगवान महावीर के ग्यारह गणधर

अर्थात्

‘प्रमुख-शिष्य’

अपापा नगरी के बाहर जय भगवान के समवसरण में साहस्य प्राणी अमृतमयी प्रभु की वाणी का शांति रमपान कर रहे थे तब उस नगरी में भोमिल नामक ब्राम्हण के यहाँ एक बहुत बड़े यज्ञ की तैयारी हो रही थी। उसमें भिन्न-भिन्न स्थानों एक प्रदेशों के बड़े-बड़े धुरधर विद्वान, आचार्य और पंडित आमंत्रित किये गये थे। उनमें से मुख्य गोव्हर नामक बस्ती से गौतम गोत्रीय वसु भूति के तीन पुत्र इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति अपने पाँच पाँच सौ शिष्यों के साथ उस यज्ञ में पधारे। वे अपने समय के विद्वानों में प्रकांड तेजस्वी और सर्वश्रेष्ठ गिने जाते थे। उनके बाद कोल्लाक गाँव से व्यक्त और सौधम्म नामक प्रचण्ड पंडित लोग बहा आये। उनके साथ उनके एक हजार शिष्य भी थे। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों से महित और मौर्य अपने अपने साठे तीन सौ शिष्यों के साथ और अकप, अचलभ्रात, मंतायं और श्रीप्रवास अपने तीन तीन सौ शिष्यों के साथ उस यज्ञ में सम्मिलित हुए।

या तो वे न्यारही पंडित अपने समय के दिग्गज विद्वान थे और धार्मिक विद्याओं में एव अनेक भाषाओं में सर्वांग अधिकार रखते थे। तब भी उनके हृदय में धार्मिक विषय में कोई न कोई शका बनी रहती थी, जिसे वे, अपन पांडित्य में धक्का लगने के भय में, किसी के सामने प्रगट नहीं कर सकते थे। इन्द्रभक्ति के मन में 'जीव है या नहीं' यह सशय पुमा हुआ था, अग्निभूति के दिल में 'कर्म कोई पदाय है या नहीं' यह चक्कर पडा हुआ था, वायुभूति को 'यह शरीर ही जीव है या जीव कोई पृथक् पदाय है' यह शका थी, व्यवन को 'जगत कोई वास्तविक पदाय है या शून्य है' यह भाव सता रहा था, सौधम्म का मन 'जीव के जमातरा के रूपा में समता और विषमता' की उधेडभुन कर रहा था, मंडित को 'मुक्ति और बध है या नहीं' इसी बात को पचायत पडी थी, मौय देवा ही के अस्तित्व में शकाशील थे, अकम्प को 'नरक गति है या नहीं' यह विचार बैचेन कर रहा था, अचलभ्रात का 'पुण्य और पाप' एव मेतार्य को 'परलोक के अस्तित्व और आत्मा की स्वतंत्रता' और श्री प्रभास को 'भुक्ति की विद्यमानता' में नाना प्रकार के मक्ल्प विवल्प हो रहे थे। परन्तु उनमें से कोई भी अपनी शकाओं का समाधान औरो से करवाना अपनी न्यूनता समझना था। वे सदा शकाशील बने रहते थे मगर शका मिटाने का कुछ भी उपाय नहीं करते थे। उनके सिवाय दिशा विदिशाओं से और भी इतर पंडित लाग भी उस यज्ञ में सम्मिलित हुए थे। यज्ञ बहुत बडा था इसलिए वहा चारों ओर से अपार भीड जमा हो रही थी।

एक ओर सामिज के यहा यज्ञ की धूम हा रही थी। दूसरी ओर भगवान के समवसरण में देवताओं का आगमन तजी के साथ

हो रहा । अपने अपने स्वर्गों से देवता लोग उस समवसरण में प्रभु का उपदेश सुनने के लिए आ रहे थे । पहले तो यह कौतुक देव इन्द्रभूति आदि को बहुत ही हृष्य हुआ । वे सोचने लगे कि देवताओं व विमान हमारे यज्ञ की ओर आ रहे हैं सचमुच हमारे मंत्रों म बड़ी ही शक्ति है । परन्तु जब वे देवताओं व विमान सब्र भगवान महावीर के समवसरण की धार जाने लगे तो उन पंडितों का हृष्य विलीन हो गया । वे सोचने लगे कि यह कोई इन्द्रजात ता नहीं है कि देवतागण व द्वाचित भूतवर यज्ञ में आने की अपेक्षा कही अयत्र भटक रहे हैं । इस बात की जब उन्होंने पूछताछ की तो उन्हें पता लगा कि यहाँ कोई महावीर नाम का सब्र आया हुआ है उसी के समवसरण म देवता लोग जा रहे हैं । यह बात जानकर इन्द्रभूति आदि विद्वानों को बड़ा शोध आया । वे सोचने लगे कि दुनिया में कोई हमसे अधिक विद्वान नहीं है, यह महावीर कहा का सब्र है, यह तो अवश्य कोई ढोंगी मायाजाली है इसे चलकर सीधा करना चाहिए और उसके पाखंड की पोल सबकी उपस्थिति में खोलना चाहिए ।

इस प्रकार शोधित हो वह इन्द्रभूति वहा से भगवान की ओर चल पडा । वह उस समवसरण में आया कि उसकी रचना देख चकित हो गया । फिर वह आगे बढ़ा और अपने पांच सौ शिष्य सहित बिना भगवान को सत्कार तथा विनय किये ही सभा मंडप में भगवान के समुख उद्घण्टतापूर्वक उपस्थित हुआ । ज्यों ही वह भगवान के समुख आया त्यों ही सब्र प्रभु ने उसका नाम लेकर उसे उसके गोत्रीय शब्दा में मन्वोधित किया । फिर तो इन्द्रभूति को कुछ अचम्भा हुआ फिर भी उसने सोचा कि "मैं" तो जगत विख्यात

हूँ, मेरा नाम कौन नहीं जानता। मेरे प्रकाण्ड पाण्डित्य की चर्चा तो चारों ओर फैल रही है वहीं इन्होंने भी मेरा नाम, गोत्र समवसरण में प्रवेश करते वकन किसी से सुन लिया होगा। उनकी सबज्ञता तो म तब गान्, जब य मेरे मनोगत भाषो को अक्षरशः पूरे - पूरे बतता दें।'

इतना विचार इन्द्रभूति के मन में आते ही भगवान बाले "पंडितराज ! 'जीव है या नहीं' यह सवाल तुम्हें सता रहा है, वेदों की साधक और बाधक ऋचाओं का पढ़कर आपका मन सन्देह से भरा हुआ है। परन्तु आपने वेद वाक्यों को भली भाँति समझा ही नहीं। चिंता दूर कीजिये और उन्हीं ऋचाओं का वास्तविक अर्थ समझकर अपने सन्देह को मिटाइयें।"

तदनन्तर भवज्ञ भगवान ने उन्हीं ऋचाओं के अर्थ की विस्तार पूर्वक व्याख्या कर इन्द्रभूति का सन्देह दूर किया। उन्होंने सिद्ध किया कि जो जानता है और देखता है वही जीव है और शरीर तो वस्त्रादि की तरह केवल उपभोग की वस्तु है। इसका पूर्ण विवरण जैन शास्त्रों में उत्तम रीति से बल्पसूत्र और भगवती आदि सूत्रों में पाया जाता है। जिस शका के निष्ठ में इन्द्रभूति गौतम वर्यो ने गीते लगा रहा या वह भगवान के सदोपदेश से बात की बात में विनारे आ भगा। अब भगवान महावीर की सबज्ञता में उसे जरा भी सन्देह न रहा, बल्कि उसके पाण्डित्य का अभिमान भी चूर-चूर हो गया। उसे बराग्य उत्पन्न हो गया। फिर तो उसने भगवान को नम्रता-पूर्वक नमन किया। और उनका शिष्य होकर दीक्षित होने की उकट अभिलाषा प्रकट की। योग अधिकारी जान प्रभु ने

इन्द्रभूति गौतम का उसके पाच सौ शिष्यो सहित दीक्षा देकर उसे अपना प्रथम शिष्य बनाया ।

इन्द्रभूति की दीक्षा की सूचना नगर में विजली की तरह फैल गई । यह सुन अग्निभूति को भी शोध आया और वह अपने दिग्गज भाई का एक साधारण बैरागी के मायाजाल में डूबने के हेतु अपने पाच सौ शिष्यो सहित उस समयसरण में आ पहुँचा । उस पर भी वही वीती जो इन्द्रभूति के साथ हुई थी । उसी प्रकार सम्बोधित कर भगवान ने उसके मन का कम काई पदाथ है कि नहीं" यह संशय निवारण किया । सुन ना अग्निभूति को भी भगवान की सवज्ञता स्मरण करने पड़ी और वह भी अपने पाच सौ शिष्यो के साथ दीक्षित हो भगवान का दूसरा शिष्य हो गया ।

इस प्रकार वायुभूति आदि इतर आठ प्रकांड पंडित क्रमशः अपने-अपनी शकाका का समाधान करने के हेतु अपने शिष्यो सहित भगवान के समयसरण में आये । सवज्ञ भगवान महावीर ने उनकी सब शकाएँ स्याद्वद सिद्धांत के अनुसार वेद ऋचाओ के सहो - मही अथ द्वारा समाधान कर दी । तब तो उनकी प्रचुर विद्वता का घमड तापज्वर की तरह उतर गया । वे अपने-अपने शिष्यो सहित जैन धर्म में दीक्षित हो गये । त्रिभुजा विस्तारपूर्वक विवरण शास्त्रो में उपलब्ध है ।

जब ता उक्त ग्यारह के ग्यारह प्रकांड पंडित अपने ४४०० शिष्या सहित भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य अर्थात् गणधर हो गये । तदनन्तर भगवान ने भी इन्ही शिष्यो द्वारा 'अहिंसा परमा धर्म' का अमृतमयी अपूर्व शान्तिदायक सत्य सिद्धान्त देश देशांतरो में फैलाना आरम्भ कर दिया ।

चन्दनवाला और मेघकुमार आदि की दीक्षा

जब भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त हो गया और अपापा-पुरी में इंद्रभूति, अग्निभूति आदि तेजस्वी पंडितों ने अपनी हार स्वीकार करके प्रभु की शरण गही तब ता उनके अगाध आत्मबल तप और तेज की महिमा दिशा विदिशाओं में फैलते फैलते कोशाम्बी पहुँची जहा चन्दनवाला रहती थी ।

चन्दनवाला ने यह प्रतिज्ञा कर ही ली थी कि प्रभु का केवल ज्ञान होने पर दीक्षा ग्रहण करूंगी । तदनुसार वह भी अपनी कुछ सहेलियों के साथ प्रभु के पास पहुँची और उनसे अपने को दीक्षित कर लेने की विनम्र प्रार्थना की । प्रभु ने अपने ज्ञान से उसकी अन्नरात्मा को पहिचान कर उसे दीक्षित कर लिया । उसक साथ अय महिलाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की । भगवान ने चन्दनवाला को सब ही साध्वियों की मुखिया, ऐसा पद प्रदान किया ।

उस समय और भी नर नारियाँ ने श्रावक और श्राविकाओं का व्रत धारण किया । इस प्रकार साधु साध्वी श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध सघ की स्थापना हुई । इसके बाद प्रभु के द्वारा गणधर भी उत्पाद, व्यय और ध्रुव, इस त्रिपदी क ज्ञान से प्रतिवाधित किये गये । उसी क आधार पर फिर गणधरों ने 'द्वादशांगी' की उत्तम रचना की ।

वहा से विहार कर रास्ते में कई स्थानों पर जगत के दु खी जीवा का अपने अमृत उपदेश द्वारा शान्ति पहुँचाते हुए प्रभु एक दिन राजगृह में पधारे । प्रभु के आगमन का सदेश वहा के राजा श्रेणिक को मिलते ही उसने उनके दर्शन करने की तैयारी की ।

राजपुत्रो ने भी यह सदेश सुना । वे भी प्रभु के दर्शन करने को राजा श्रेणिक के माथ पधारे । भगवान के समीप आकर उन्होंने बड़ी श्रद्धा, भक्ति और विनय सहित प्रभुकी वन्दना की । फिर प्रभु ने उन्हें सम्यक्त्व का तत्व समझाया, जिसे सुनकर राजकुमार अभय ने तो उसी समय श्रावक धम अगोकार कर लिया और मेघ कुमार, जो राजा का जेष्ठ पुत्र था, वैराग्य भाव से परिस्पावित हो गया ।

घर पर आकर मेघकुमार अपने माता पिता से बोला 'मेरा मन अब ससार में नहीं लगता, ससार तो मुझे बहुत सतापकारक प्रतीत होता है मुझे आज्ञा दीजिये तो मैं भगवान महावीर की शरण जाकर, दीक्षा गृहण कर, आत्मा सशोधन करूँ ।' राजा का यह बात सुनकर बहुत अचम्भा हुआ कि भगवान के एक ही दिन के उपदेश ने राजपुत्र के मन में वैराग्य का घर कर लिया । फिर तो राजा ने राजकुमार का बहुतेरा समझाया । उन्होंने एक दिन का राज्य उसे दत्त, उसकी महिमा एवं सुख का प्रलोभन दिखाकर उसके चित्त की वृत्तियों को सासर सुख की ओर खींचने के कई प्रयास किये, परन्तु वे सब निष्फल हुए । मेघकुमार की वैराग्य भावना ज्यों त्यों सुदृढ़ बनी रही । तब तो राजा का उसे दीक्षा गृहण करने की अनुमति देनी पड़ी । तत्पश्चात् मेघकुमार प्रभु के पास आये और अपने आंतरिक विचार उनके सन्मुख प्रगट किये । भगवान ने भी उसके परिणामो की रूप रेखा परखकर उसे दीक्षा दे दी ।

रात्रि में नवदीक्षित मुनि मेघकुमार को उस स्थान पर सोना पड़ा, जहाँ से उनके पूर्व दीक्षित साधुओं के आने जाने का मार्ग था । मुनिघो के बाहर जाने आने में अनेक बार मेघ मुनि को उनके पैरों

के प्रहार सहन करने पड़े। बस एक ही रात की इस वेदना ने मेघ मुनि के विचारों में परिवर्तन कर दिया। उनका मन समय से हट गया। वे सोचने लगे कि 'प्रातः काल ही प्रभु के समुद्ध जाकर मैं इस व्रत को त्याग दूंगा।' प्रातः काल हाते ही मेघमुनि भगवान के पास आये और रात्रि का सब वृत्तांत सुनाकर समय व्रत छोड़ देने की अपनी इच्छा प्रगट की। तब प्रभु वाले 'देवानुप्रिय रात्रि की इस छोटी सी वेदनाओं से तुम इतने व्याकुल हो गए, तुम अपने पूर्वभव की बात याद करो। 'तुमने पूर्वभव में क्षणिक उत्तम क्षमा एवं दया के कारण उच्च गति का बाध बाध लिया था। यदि यह बात तुम्हें स्मरण हो जावे तो तुम समय व्रत छोड़ने के बदले सप्ताह को समय की ओर खींचने में लग जाओगे' तब तो मेघ मुनि हाथ जोड़कर भगवान से अपने अपूर्व भव की बात बताने के लिए प्रार्थना की।

मेघ मुनि की यह भावना देख प्रभु बोले 'भव्य मेघकुमार! पूर्व भव में तू एक हाथी था। तेरा नाम मेरुप्रभु था तू विध्याचल के वनप्रदेश में ह्यिनिया का यूयपनि बनकर रहता था। एक दिन उस वन में भयंकर आग लगी, तब तूने अपनी कुल ह्यिनियों को साथ लेकर उसी वन के एक जलाशय के निकट लाकर उन्हें विधाम दिया। अग्नि की ज्वाला से दूसरे वन के प्राणि भी भागकर तेरे विधाम स्थान में घुस आये। उस समय पड़ोस की आंच के कारण तेरे वदन में कुछ खुजली चली, तब अपने वदन का खुजलाने के लिए तूने अपना एक पाँव ऊपर उठाया, इतने में ही एक भयातुर खरगोश तेरे उस उठाये हुये पर के नीचे आकर बैठ गया। यह सोचकर कि 'अब यदि पाव नीचे रखा तो यह प्राणी दबकर मर

जायगा, तूने अपना वह पाव दया के कारण पूरे तीन दिन तक ऊपर ही उठा रखा। तीसरे दिन जब अग्नि शान पडी और सब प्राणी वहा से चले गये, तो अपनी प्यास बुझाने के हतु जलाशय के पाम जाने के कारण जमीन पर टिका नही जीर तू घडाम से गिरकर उसी समय मर गया। उस तीन ही दिन की पवित्र दया के कारण मरकर इस भव में तू मनुष्य रूप में आकर राजपुत्र बना। जत अब इस समय व्रत का धारण कर उसे छोडना कायरपन है अत्र ता तुझ एक वीर की भाति कर्मों पर विजय प्राप्त करना चाहिए।

भगवान के इस जमृतमय उपदेश का सुन मेघमुनि को स्मरण ज्ञान पैदा हा गया। उसने अपने पूव भव की सारी बात जानली। तत्र ता मेघमुनि का विचलित मन पुन समय व्रत में सुदृढ हा गया और उमी दिन मे व कठोर से कठोर तप की आराधना करने लगे।

इसी प्रकार भगवान ने गृहस्थी अवस्था के जामाता जामाली एव उनकी पुत्री प्रिय दशनाजी ने भी भगवान के लान हितकारक उपदेशों को सुनकर कुण्ड ग्राम म दीक्षा लेली। इनम से मिध्यात्व का उदय होने के कारण जामालि ता मिध्यात्वी ही बन रह, परन्तु प्रिय दशनाजी ने प्रभु की शरण गहकर उत्तम साधवी जीवत बिताना आरभ कर दिया।

ग्रहस्थ अर्थात् श्रावक धर्म

जैन शास्त्रा के पठन से ऐसा प्रतीत होता है कि आज मे पच्चीस सौ वर्ष पूव यह भारतभूमि स्वर्णमयी भूमि थी। क्योंकि

प्रभु महावीर ने जब गृहस्थ धर्म का उपदेश दिया तब जिन जिन गृहस्थियो ने श्रावक धर्म अंगीकार किया वे सबके सब प्रायः करोड़पति ही थे । जिनकी करोड़पति की गणना चांदी के रूपया में नहीं, बरन सोनैया अर्थात् मोन की मोहुरो से होती थी ।

वाणिज्य पाद में जब प्रभु पधारे तो वहा आनन्द नामक एक सेठ रहता था । वह बारह करोड सोनैया का स्वामी था । भगवान के मतोपदेश से उसने श्रावक धर्म स्वीकार किया और उसी दिन मे अहिंसा का सच्चा उपासक बन गया ।

भगवान का अहिंसा का उपदेश आत्मशुद्धि का उपदेश था । बिना अहिंसा के आत्मशुद्धि हा ही नहीं सकती । भगवान महावीर ने आत्मशुद्धि के लिए पृथक् पृथक् तरीके बताये हैं । ज्या - ज्यो प्राणी स्वाध और तृष्णा को तजता है त्या-त्या वह आत्मकल्याण की ओर अप्रसर होता जाता है । और जब वह पूर्ण निर्विकार रागद्वेष रहित हा जाता है तब ही उसकी पूर्ण विशुद्धि हा जाती है । इसी स्वाध और तृष्णा का नष्ट करने के लिए प्रभु महावीर ने पाच बातें उताई हैं । अर्थात् अहिंसा, मत्य अस्तंय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह ।

इन अहिंसादि पाच व्रतो के उच्च आदर्श का प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण रूपण पालन नहीं कर सकता इसलिए प्रभु महावीर ने इसे अणुव्रत और महाव्रत इन दो भागो में बाट दिया । इन दो विभागो में बाट जाने से इन में व्यवहारिकता आ गई, तथा साधारण शक्ति वाली के लिए भी आत्म कल्याण का मार्ग खुल गया । अणुव्रत का प्रवृत्ति मार्ग भी निवृत्ति मार्ग पर ले जाने

गया, अणुव्रत की प्रवृत्ति आत्म-कल्याण में बाधक न बनकर साधक बन गई। मार्ग में निवृत्ति मार्ग के त्याग, तप समयमादि का समावेश उचित रीति से हो जाने के कारण प्रवृत्ति ससार में लिप्त हो जाने के वातावरण से बच गयी।

तदनुसार भगवान् महावीर ने समाज को, गृहस्थ और मुनि, इन दो भागों में विभक्त किया। गृहस्थ के लिये अणुव्रतों का तथा मुनियों का महाव्रत पालन करने का आदेश दिया। व्रत दोनों के लिये समान है, अन्तर केवल इतना ही है कि उन्होंने गृहस्थ के लिये वे ही पाँच व्रत स्थूल रूप से अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुसार द्रव्य, काल, भाव, क्षेत्र को लक्ष में रखकर पुरुषार्थ सहित पालन करने का आदेश दिया तथा मुनि के लिये वे ही पाँच व्रत सूक्ष्म रूप से पालन करने का उपदेश दिया। इस प्रकार मुनि धर्म के साथ ही साथ प्रभु ने श्रावक धर्म का भी उपदेश देना आरम्भ किया। आनन्द श्रावक के पश्चात् भगवान् ने चम्पानगरी में रामदेवजी श्रावक का श्रावक धर्म का महत्त्व समझाया। उनके पास अठरह् करोड़ सोनेयो की सम्पत्ति थी। प्रभु के सतोपदेश से उन्होंने मय प्रकार के प्रमादों का त्याग कर दिया, और प्रभु के उत्तम श्रावक बन गये। वाणारमी और आलम्बिका में भगवान् के उपदेश से भिन्न-भिन्न वास्तियों में चुलणीपियाजी, सुरादेवजी चुलणतकादिने श्रावकों के उत्तम धर्मों को धारण किया। फिर भगवान् कपिलपुर पधारे। वहाँ कुण्डकौलिक को धर्मोपदेश दिया। यह कुण्डकौलिक ग्यारह् करोड़ सोनेयो का स्वामी था और इनके पास साठ हजार गायें भी थी। भगवान् के उपदेश का इन पर इतना प्रभाव पड़ा की वे उसी दिन से श्रावक धर्म पालते हुए

जप, तप, सधमादि की उत्तम क्रियाओं में सलग्न रहने लगे । एक समय जब कुण्डकौलिक सामायिक कर रहे थे तब इनके दृढ़ निश्चय की परीक्षा करने के लिये एक देव आकर बोला “हे कुण्डकौलिक ! तू गौशाला प्ररूपित नियतिवाद के सिद्धान्त पर क्या नहीं चलता जो होने वाला है वह तो होकर ही रहेगा, व्यथ के क्रिया का एडो द्वारा उठाने से क्या फायदा है इत्यादि” तब तो कुण्डकौलिकजी ने कहा “देव! तेरा कहना कदाचित् ठीक भी हो, परन्तु जो बात प्रत्यक्ष है उसे प्रमाण की क्या जरूरत है, यम और नियमादि में यदि कुछ नहीं है तो तुम्हें यह देव श्रद्धि कैसे प्राप्त हुई ।” तब देव बोला “मुझे तो बिना ही यम नियमादि के देव गति प्राप्त हुई है ।” कुण्डकौलिकजी ने उत्तर दिया कि “यदि ऐसा ही है तो जगत के अनेको जीव जो कुछ भी धर्म-कर्म नहीं करते वे सबके सब देव क्यों नहीं बन गये ।” इस पर देव चुप होकर वहाँ से चला गया और कुण्डकौलिक अपने धर्म कर्म में जोर दृढ़ बन गया ।

इस प्रकार भगवान महावीर ने अनेक पुरुषों का श्रावक धर्म का उपदेश दिया और उन्हें मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर कर दिया । इही श्रावकों द्वारा बनवाये हुए चित्ताक्षयक विशाल मन्दिर एवं पुरातन पाठगृह और बिद्यादि अनेक स्थानों में आज भी भारतवर्ष में विद्यमान हैं और जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन स्थान - स्थान पर जैन शास्त्रों में उपलब्ध है ।



पुरुषार्थ और पराक्रम

कुम्भकार सहाल पुत्र का सशय छेदन

स्थान स्थान विचरते हुए एक दिन प्रभु पोलासपुर पधारे। वहा सहाल पुत्र नाम का कुम्हार रहता था। वह गौशाला का कट्टर अनुयायी था। वह अपने मुँह के 'नियतिवाद' के सिद्धांतों को इस प्रकार अपना चुका था कि बड़े से बड़े विद्वान उसका सामना नहीं करते थे। उसका यह मिद्धांत था कि 'मसार में जो वस्तु अथवा हानहार हाने वाली होती है वह अवश्य होकर रहती है, उसमें किसी बात का विचार विनिमय करने की एक उपाय रचने की कोई आवश्यकता ही नहीं।'।

एक दिन प्रभु अपने उपदेश मथोताओं का पुरुषार्थों की महिमा एवं समयानुकूल पराक्रम का उपदेश एवं आत्मरक्षा हेतु समझा रहे थे। उस समय सहाल पुत्र भी वहा बैठा हुआ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ एवं आत्म रक्षा के हेतु पराक्रम, बल, और वीर्य का प्रिवेचन सुन रहा था। परन्तु उसके मन में गौशाला का नियतिवाद ही घर घर बैठा था। उसे प्रभु की सबजता पर सदेह था तिस पर भी भगवान के प्रति आन्तरिक मत्कार की भावना उसके मन में जागत ही रही थी। उसी से प्रेरित हो, व्याख्यान खरम होने के बाद उसने प्रभु के चरणों में नमन किया और प्रायना की कि 'भगवान ! इसी नगर के बाहर मेरी दूकानें हैं। अच्छा हो कि मेरी शका निवारण करने के लिए कुछ काल तक आप वहा ठहरे।' भगवान ने सहालकी प्रायना स्वीकार करनी और उही पधार गय।

एक दिन जब सहाल के नौकर उसके बनाये हुए मिट्टी के बरतनों को घूम में मुखा रहे थे, तब प्रभु ने पूछा "सहाल ! कही य बरतन किस प्रकार बनायें हैं ?" सहाल ने उत्तर दिया, पहले मिट्टी लाया, उसमें पानी और राख मिलाई, फिर उसको लुगदी चाक पर घडाकर इच्छानुकूल बरतन बना लिये गये।" इम पर प्रभु न फिर पूछा, 'सहाल ! इनके बनाने म बल वीय पुरुषाय, परिश्रमादि लग या नही, या ये योही बनकर तैयार हा गये ।" सहाल वाला 'नही प्रभु! य योही बनकर तयार हा गय, यही ता मेरे गुरु का सिद्धान्त है। जा वस्तु भावी के बल जसी भी होती है, हाकर रहती है। उसमें किसी भी प्रकार क क्रियाकाड और परिश्रम का अवलम्बन नही माना जाता।" इस पर प्रभु ने उससे कहा क्या सहाल। यदि तेरे इन बरतनो का कोई चार उठा ल जावे, या इन्हे कोई तोड फाड डाले, अथवा काई आकर तेरो स्त्री का सनीत्व हरना चाहे ता इनमें से प्रत्येक व्यक्ति के साथ तू निम प्रकार बर्ताव करेगा ?" सहाल ने कहा "भगवान बर्ताव की बात ही क्या ? उसे ना लात, घूसे थप्पडा से मीघा करूंगा और बने तो जिन्दा भी न छाडूंगा।" प्रभु वाले 'सहाल ! विचार कर बोल। तू स्वय अपने सिद्धान्तो की हत्या न कर। तेरे सिद्धान्त के अनुसार तो जो होने वाला होता है वह तो होकर ही रहता है। बरतनो का चुराना, ताडना फोडना, पत्नी के पतिव्रत धम का हानि पहुचाना इत्यादि, बिना किसी प्रकार के उत्थान बल, वीय, पुरुषाय के तेरे मतानुसार होने वाला है वह तो होकर ही रहेगा। तुम्हें उर्हें रोकने के लिये लात, घूमे और जान लेन की आवश्यकता ही क्या है।" प्रभुकी इस वाणी को मुन सहाल का भ्रम दूर हो गया। उसने अपने सिद्धान्त का खाखलापन जान लिया। वह प्रभु के चरणो म आ गिरा

और बोला "सबज्ञ । आपतो घट-घटकी जानते हैं । आपका स्याद्वाद सिद्धांत में आज तक सुनता ही था अब तो उस पर मेरी पूण श्रद्धा हा गई है । मुझे भी अपना शिष्य बनाकर स्याद्वाद के सिद्धांत को मेरे हृदय में उतारिये । और आपकी शरणागति प्रदान कीजिये ।" इस पर भगवान ने उसे स्याद्वाद धर्म के सन् सिद्धान्तों का महत्व समझाया और उसे श्रावक धर्म की दीक्षा देकर वहा से गमन कर दिया । वहा से राजगृह में पधारकर चौबीस कराड स्वर्ण मुद्रा के धनी महाशतक और उनकी पत्नी रेवती को भी श्रावक धर्म के द्वारहू व्रतो स विभूषित किया ।

राजापि प्रसन्नचन्द्र

मुनि एव गहस्य धर्म का सुंदर उपदेश देते हुए वो स्थान-स्थान पर पुष्पाथ और पगत्रम की सुंदर महिमा का प्ररूपण करते हुए अनुक्रम से विहार करते-करते प्रभु महावीर पोतनपुर की ओर जा निकले । उस समय वहा राजा प्रसन्नचन्द्र राज्य करता था । ज्यो ही प्रभु उसके नगर में पधारे तो उस नगर के बाहर मनोरम नामक उद्यान में देवताओं ने समवसरण की रचना की । वहा का राजा प्रसन्नचन्द्र उमी समय प्रभु की वदना करने आया । प्रभु की देशना सुन उसको उसी समय बराग्य उत्पन्न हो गया । वह अपने घर आया और राजकाज का भार अपने लहके को सौंप, उसे मन्त्रि ओ के हवाले करके, प्रभु के पास आकर दीक्षा ग्रहण कर ली । तत्पश्चान् राजापि प्रसन्नचन्द्र भगवान के साथ साथ विहार करने लगे ।

कुछ समय पश्चात् भगवान महावीर राजगृह नगरी में पधारे । यह समाचार सुन हर्षायमान हो राजा श्रेणिक सह कुटुम्ब प्रभु की वदना करने को रवाना हुआ । उसकी सेवा के अग्रगामी सुमुख

और दुर्मुख दो मिष्पादृष्टि सेनापति आपस में बातचीत करते हुए आगे आगे चल रहे थे। भाग में उन्होंने प्रसन्नचन्द्र मुनि को एक पंर पर पड़े और ऊचे हाथ किये हुए, आतापना करते हुए देखा। उन्हें देखकर सुमुख बोला, 'ऐसी कठिन तपस्या करने वाले के लिए स्वर्ग और मोक्ष कुछ भी दुर्लभ नहीं है।' यह सुनकर दुर्मुख बोला, 'अरे यह तो पोलनपुर का राजा प्रसन्नचन्द्र है। इसने अपने छाट से सड़के को अपना बड़ा राज्य देकर कितनी विपत्ति म डाल दिया है। उसने मन्त्री चम्पानगरी के राजा दधिमाहन से जा मिले है और उन्होंने उसका राज्य छुड़ा लेने के लिए उस पर चढ़ाई कर दी है। इसी प्रकार इसकी रानिया भी राज्य छोड़कर चली गई हैं। यह वाई धर्म है।' इन वचनाने प्रसन्नचन्द्र के ध्यान को विचलित कर दिया और वे सोचने लगे 'अरे मेरे उन अकृतज्ञ मन्त्रियों का बारम्बार प्रियकार है। यदि इस समय में वहा उपस्थित होता तो उन्हें इस विषयामघात का फल चखाता।' ऐसे मकल्प विकल्पों से व्याकुल होकर प्रसन्नचन्द्र मुनि अपने मुनि व्रत का भूल गया और अपने को राजा समझकर मन ही मन मन्त्रियों के साथ युद्ध करने लगे।

इतने ही में राजा श्रेणिक की सवारी वहां आ पहुँची और उसने प्रसन्नचन्द्र मुनि की विनयपूर्वक वन्दना की। वहां से चलकर वह वीर प्रभु के समीप आया और दशन, वदनाकर विनय सहित उसने प्रभु से पूछा, हे प्रभु! इस प्रकार उग्र अवस्था में यदि मुनि प्रसन्नचन्द्र की मृत्यु हो जावे तो उन्हें कौन सी गति प्राप्त होगी? प्रभु ने उत्तर दिया 'जि वे सातके नरक में जायेंगे।' यह सुनकर राजा श्रेणिक बड़े विचार में पड़ गये। क्योंकि राजा श्रेणिक ने यह सुना था कि मुनि कभी जाते ही नहीं। अनएक

सोचा कि वही उसने गुनने में फरक न पड़ गया हो उसने फिर से पूछा 'भगवान यदि मुनि प्रसन्नचन्द्र इस समय मृत्यु पा जाय तो कौन सी गति म जायगे ' प्रभुने कहा कि -- 'अब वे सर्वार्थ सिद्धि विमान में जायगे ।' राजा श्रेणिक अब तो चक्कर में पड़ गये । उन्होंने पूछा भगवान ! आपने एक ही क्षण के जन्तर पर दो बातें एक दूसरी से विपरीत कही इसका कारण क्या है । मेरे इस सशय का मेटिये ।

तब प्रभुने राजा की उत्पत्ता देख उसे यो कहा--श्रेणिक । ध्यान के भेद म प्रसन्नचन्द्र मुनि की अवस्था दो प्रकार की हा गई । पहिले दुमुख के वचना से प्रसन्नमुनि अत्यन्त क्रोधित हो अपने मंत्रिया से मा ही मा युद्ध कर रह थ, उसी समय तुमने उतरी बदना की थी, और आकर मुझ से प्रश्न पूछा था । उस समय उनकी स्थिति नरकगति के योग्य हो रही थी । उसके पश्चात उन्होंने मा में विचार कि अब ता मेरे सब शस्त्र छूट गये, इसलिये अब मैं शिरस्त्राण से ही शत्रुओं का नाश करूंगा । ऐसा सोचकर उन्होंने अपना हाथ सिर पर फेरा । वहा अपने सोच बिये हुए त्रिकने सिर का देख, उन्हें तत्काल अपने मुनि व्रत का स्मरण हा आमा जिमने उहे अपने किय का बहुत पश्चाताप हुआ । अपने दम कृत्य की आनोचनाकर वे फिर शुकल ध्यान में मग्न हो गय । उनी समय तुमने पुन दूसरा प्रश्न किया । और उसी कारण मुन्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर दूसरा दिया गया ।

इस प्रकार श्रेणिक और सर्वज्ञ भगवान की बातचीत हो ही रही थी कि इतने में ही प्रसन्नचन्द्र मुनि के समीप देव दुन्दुभि वगर की गगन भरी आवाज गुनाई देने लगी । उसे सुनकर श्रेणिक ने पूछा-

‘स्यामी’ यह क्या हुआ ।’ प्रभु ने कहा— ‘ध्यानमय मूर्ति प्रसन्न-
चंद्र का इसी क्षण बेयन ज्ञान की प्राप्ति हुई है । इसका साग
उगी की छाँगी मना रहे है ।’

सत्याग्रहि सेठ नुदर्शन और अर्जुन माली

कई स्थानों पर बिखरते हुए एक बार फिर भगवान राजगरी
में पधारे । भगवान के पधारने की सूचना मिलने ही सारा नगर
आनंद में उमड़ उठा । उम गरी के मुद्गन सठ की इच्छा भी
प्रभु के दशनाथ जागून हुई । उसका मन भगवान के प्रति प्रेम
और भक्ति में भर गया । वे तुरन्त ही अपने माता पिता के पास
आये और प्रभु के दशन के लिए जान की आशा मागा । माता-
पिता ने उनकी निर्गुनी अम्बीवार कर ली । वे पाले— बेटा ! अर्जुन
माली के शरीर में एक अमुर प्रवेश कर गया है । यह गाँव के
बाहर घूमता फिरता है और प्रतिदिन छे पुष्प और एक स्त्री का
प्राण अपहरण करता है । यही कारण है कि राजा ने भी अकेले
शहर के बाहर जाने की मारि कर दी है । इस लिए तुम यही मे
प्रभु की सदा कर लो । ये सबज है तुम्हारी भाव भक्ति और
वन्दना को ये अवश्य स्वीकार कर लगे । परन्तु मत्स्य और प्रेम
पर डटा हुआ मनूष्य एगी भीमता की बात ही बग मुन मक्ता
है । नेठ मुद्गन ता अहिमा, मत्स्य, प्रेम और भक्ति से गा हुए
ये वे अपने हृदय में प्रभु-भक्ति को स्थान द चुके थे । भय के
लिए उनका गाहसी हृदय में जगह ही न थी । मत्स्य, भक्ति का
लेकर मन् प्रभु चरणा के दशनाथ पिता की आशा लेकर सठ
मुद्गन भगवान की आर धन पडे । ये मन ही मन गाधन लगे
कि मत्स्य की मुद्दिमा और आरमभक्ति के आ



शक्ति की हस्ती ही क्या है जो अविनाशी आत्मा पर घात पहुँचा सके। अगर भगवान के प्रति मेरी सच्ची भक्ति है तो अर्जुन माली मेरा जिगाड ही क्या सकता है क्योंकि सत्य की तो सदैव विजय होती है। इस प्रकार विचार करते हुए सेठ सुदर्शन गाव के बाहर आ गये। घाड़ी देर के बाद अर्जुन माली की दृष्टि सेठ पर पड़ी। वह अपना मुद्गर लेकर शेर की तरफ लपकता हुआ वहाँ आ पहुँचा। अर्जुन की इस लपक से सेठ तिलमात्र भयभीत न हुए, अपितु प्रभु का ध्यान करते हुए परम शांति और प्रसन्नता के साथ जमीन पर बैठ गये। अर्जुन ने पास आते ही मुद्गर उठाया और सुदर्शन को मारना चाहा। ज्यों ही उगने अपना मुद्गर सिर पर उठाया त्यों ही उसके हाथ वही क वही रह गये। बहुतेरा प्रयत्न करने पर भी उसके हाथ नीचे न आ सके। यह देखकर अपनी शक्ति पर उसे बड़ा ही श्राप आया। नज्जा के मारे वह इधर-उधर झुकाने लगा और टक्करी लगाकर सुदर्शनजी की आर देखने लगा। अन्त में जब अर्जुन ने अपने मन ही मन हर प्रकार से हार मान ली तब ता उसने शरीर में जो अमुर गत छ महीनों से घुसा हुआ था छाडकर भाग गया। इसके बाद अर्जुन अचेत हो घरती पर गिर पडा। सेठ सुदर्शन के सत्याग्रह की पूर्ण विजय हुई।

घाड़ी देर बाद जब अर्जुन को चेत हुआ तब तो उसने बड़ी लज्जता से सुदर्शनजी से पूछा 'भाई! आप कौन हैं? कहा रहते हैं और कहा जा रहे हैं?' सुदर्शनजी ने कहा- 'भाई! मेरा नाम सुदर्शन है, मैं इसी गाव में रहता हूँ और श्रमण भगवान महावीर के दशन तथा वादना को जा रहा। यह सुन अर्जुन का मन भी भगवान के दशन, वादनादि के लिये अकुलाया। वह बोला- 'भाई!

सुदर्शन ! मैं तो जाति का मानो हूँ, मेरी भी इच्छा भगवान के दर्शन करने की है, उनके उपदेश सुनकर मैं अपना जन्म सफल करना चाहता हूँ । आपके साथ चलकर क्या भगवान तक मेरी भी पहुँच सम्भव है ?' इस पर सुदर्शनजी बोले - 'निस्सन्देह ! तुम एक बार क्या, सौ बार भगवान की शरण में परम हृष के माध्यम जा सकते हो । जाति पाति का वहाँ कोई भी भेद नहीं है । उनके शिष्य और शरणागत होने में देश, बाल और पात्र जरा भी बाधक नहीं बनते । तुम अवश्यमेव मेरे माध्यम वहाँ चल सकते हो ।'

यह सुनकर हर्षाश्रमण हो अर्जुन सेठ सुदर्शन के साथ भगवान के पास जाने का उठ खड़ा हुआ । वे दोनों भगवान के पास आये । विधिवत् वन्दन कर वे भगवान के सामने बैठ गये । परम सुन्दर, जगत हितकारी भगवान का उपदेश सुनकर सुदर्शनजी ता अपना घर को आ गये और अर्जुन मानो भगवान का शिष्य बनकर वहीं रहने लगा ।

अब तो यह अर्जुन पहले का नर-महारक अर्जुन न रहा । भगवान के उपदेशामृत से उसने बड़े-बड़े की तपस्या आरम्भ कर दी । अर्थात् दो-दो दिन अनशन और एक दिन भोजन करने लगा । जिस दिन अर्जुन पारण के लिये भाजन सामग्री उस गाँव में लेने का जाता तो गाँव के लाग उसे पूववत हिमक समझकर नाना प्रकार की यातनाएँ दते और कभी कभी तो यहाँ तक नीवत आ जाती कि वहाँ से उसे बिना भोजन ही लौट आना पड़ता था । उन मारी यातनाओं का अर्जुन मुनि हस-हस कर सहते और कभी रोय एक श्रोध न करते । पूवकृत कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ेगा ऐसा समझकर अर्जुन मुनि अपने कर्मों का चुकात । यो अर्जुन मुनि

राग द्वेष रहित होकर जा कुछ मिलता उसी में सतोप मानते हुए अपने कर्मों की निर्जरा करते रहते थे। इस प्रकार सन्तोष, क्षमा, अहिंसा, अमान और अत्रोघादि सत्भावना से युक्त छै माह की तपस्या कर अजुन मुनि सत्सग द्वारा भय सागर पार कर गये।

पश्चात् इसी राजगृह में कासव, वीर, और मेघ नामक व्यक्ति भगवान की शरण में आये और दीक्षा गृहण करली। तदनन्तर बाकदी निवासी धेम और घतिघर, साकेत ग्राम के कैलाश और हरिचन्दन, श्रीवस्ति क धमणभद्र और सुप्रतिष्ठ तथा मुदशन आदि गाथापतियों ने भगवान से क्रमश दीक्षा धारण की, और जप तप करके अंत में इन सब ही ने मुनि माग सम्पादन कर लिया।

एवन्तकुमार

पानासपुर के राजा विक्रम का पुत्र, एवन्तकुमार, एक समय कुछ लडका के साथ खेल रहा था। उम समय उम नगरी में पघारे हुए भगवान महावीर के माथ गौतम स्वामी भी थे। गौतम स्वामी अपने बने के पारण के हेतु भगवान की आज्ञा लेकर आहार के लिए बस्ती में पघारे। चलते हुए बालक एवन्तकुमार ने मुनि को इधर-उधर जाता देख उनसे पूछा कि 'आप कौन हैं? इधर-उधर क्यों फिर रहे हैं?' गौतम स्वामी ने उत्तर दिया 'हम निग्रन्थ साधु हैं और अनैमित्तिक आहार पानी की खोज में घूम रहे हैं।' यह सुनकर राजकुमार ने गौतम स्वामी की अगुली पकडकर अपने राजमहल में ले आया और अनैमित्तिक आहार पानी उह बहरा दिया। इस पर कुमार की माता बहुत प्रसन्न हुई और अपने तथा राजा के भाग्य

को बारम्बार सराहने लगी । जब गौतम स्वामी वापस जाने लगे तो राजकुमार ने उनके ठहरने का पता पूछा । गौतम स्वामी वाले नगर के बाहर जहाँ मेरे धर्म गुरु भगवान महावीर ठहरे हुए हैं वही के साथ मैं भी हूँ । तब तो राजकुमार ने भी प्रभु के दान करने की इच्छा प्रगट की और गौतम स्वामी के साथ चल पड़े । भगवान के पास पहुँचकर राजकुमार न बड़े प्रेम और भक्ति पूर्वक प्रभु की वदना की और कुछ धर्म उपदेश सुनने के लिए व उनके सम्मुख बैठ गये ।

प्रभु की दिव्य वाणी का उनके ऊपर इतना प्रभाव पडा कि उनका मन बराम्य से भर गया । वे दीक्षाव्रत धारण करने के लिए माता पिता की आज्ञा लेने को राजमहल में आये । माता-पिता और पुत्र के बीच बहुत देर तक वार्तालाप होने पर विवश ही राजा रानी ने पुत्र को दीक्षित होने की आज्ञा दे दी । एवत्त-कुमार आना लेकर शीघ्रतिशीघ्र भगवान महावीर की शरण में जाय । प्रभु न उन्हें पात्र जानकर दीक्षित कर लिया ।

एक दिन नवदीक्षित एवत्तकुमार शौचादि के लिए बाहर गये हुए थे । रास्ते में बहुत वर्षा हुई और पानी की धारे बह चली । वहाँ मुनि ने मिट्टी की एक पार धाघी । पार के पीछे बहुत पानी जमा हो गया । उसी गदले पानी में मुनि एवत्तकुमार अपना पात्र तिराने लगे । बाल मुनि की यह क्रिया अथ मुनियों को बहुत बुरी लगी ऐसी बाल दीप्ता के कुरिणामो का प्रभु के सम्मुख वणन कर वे भगवान पर आक्षेप करने लगे । फिर सबज्ञ प्रभु न उन्हें बहुत ही शान भाव से समझाया । वे बाले कि 'समय पालन में और आत्म बल्याण करने में वय का आधार नहीं लिया जा सकता ।' बाल मुनि की ओर सवेत कर प्रभु ने कहा-

'मुनियो' अपने पात्र को इस गदले पानी में तिराने का घालमुनि का यही उद्देश्य था कि वे अपनी आत्मा को भी इस गदले ससार-सागर से बठोर प्रयत्न करके तिराकर पार ले जावेंगे।' यह सुनकर अय मुनि तो अपना सा मुह लेकर रह गये, और बाल-मुनि ने प्रभु की उम बाणी को अपनी क्रिया में उतारने का निश्चय कर लिया तथा उसमें अपनी पूण शक्ति लगाकर पार-गामी हो गये।

शालिभद्र और धनामुनि

वाराणसी के उस समय के राजा अलख का दीक्षा देते हुए तथा अपने मतपदेश से भव्य जीवो को प्रतिबोधित करते हुए एक समय प्रभु महावीर पुन राजगृह में पधारे। इस समय उसी नगर में एक कोटचाधीश शालिभद्र नामक मेठ रहता था। भगवान की शरण में आकर अपने राजसी वैभवा का ठुकराकर उसने दीक्षा ग्रहण की। य शालिभद्रजी इतनी बडी सम्पति के स्वामी कैसे बने, उमका एक दम त्याग उन्होने कैसे कर दिया उनको पूव करणी कैसी थी इत्यादि बातों का सक्षिप्त वणन शास्त्रानुसार इस प्रकार है—

राजगृह के समीप किसी समय शालि नाम की एक छोटीसी बस्ती थी। उसमें ध या नाम की एक गरीब स्त्री रहती थी। जब यह स्त्री उस गाव में आकर बसी थी उस समय उसका केवल एक छोटा-मा पुत्र ही उमकी सम्पति रूप था। उसके पुत्र का नाम सगम था। जब सगम थोडा बडा हुआ तो उसने गाव के डोरा को चराने का काम लिया। आजीविका का कोई दूसरा साधन न होने के कारण धया को यही कमाई अघे को लकडी का सहारा के समान हुई।

एक दिन किसी पर्वोत्सव के कारण गाँव में खीर पूड़ी
 बगर के पक्वान घर - घर में बने । सँगम ने लोगों से इसका
 कारण पूछा और उसका दिल खीर खाने का ललचाया । वह
 उसी समय अपनी माता के पास आया और रोते हुए माता से
 खार माँगी । अपने दीन हीन बच्चे की ऐसी दशा देख और
 अपनी गरीबी पर पश्चात्ताप कर उसकी छाती भर आई । वह
 राती हुई अपने प्रिय बालक का मुख चूम कर बाली बेटा ।
 दुःख की मारी हुई आज मेरे पास एक पैसा भी नहीं है' परन्तु
 सँगम भोला था वह तो खोर - खीर करके जोर - जोर से रोने
 लगा । तब ता पड़ोसियों को माँ बेटे की दीन हीन दशा पर तरस
 आया और उन्होंने उस बच्चे के लिए खीर का सामान जुटा
 दिया । माता ने खीर बनाकर बच्चे को परोस दिया और किसी
 दूसरे काम में नग गई । इतने में ही वहाँ आहार - पानी के
 लिए एक मुनिराज का आगमन हुआ । वे एक मास के उपवास
 घारी मुनि थे । आज ही उनके पारण का दिन था । बालक न
 ज्यो हि मुनि को देखा तो उनके मन में भी धनी लोगों के
 समान मुनि का आहार कराने की इच्छा उत्पन्न हो गई । तुरन्त
 उमने मुनिमहाराज को बुलाया और अपनी थाली की आधी
 खीर लकीर पाडकर मुनिजी को देने का निश्चय कर लिया ।
 ज्या हि उमने अपनी थाली की आधी खीर मुनि के पात्र में
 डालने का घाली को टेडी की त्यो हि सारी खीर उनने पात्र में
 जा गिरी तब बालक का मन और भी हर्षायमान हुआ । > वह
 सोचने लगा कि लोग तो बुनावुलाहर मुनि को भोजन कराते
 हैं तब भी वे नहीं लेते मगर आज मेरे भाग्य प्रबल है कि सारी
 खीर मुनिमहाराज ने गृहण कर ली । मुनिजी तो लेकर

गये पर तु भोगम गानी गानी ही चाटता रहा। गोड़ी देर बाद सौम की माता जा गई। तब गा यह सोचने लगी कि मेरा प्यारा पुत्र गोर इन्त ही भूखा रहता होगा। यह मा ही मन अपने भाग्य का वागमन लगी।

इस प्रकार माता का दृष्टि दोष होने ही सौम के पेट में शून्य की पीड़ा आरम्भ हो गयी। परन्तु उसके मरस प्रणामों में किसी तरह की खाद्या नहीं पहुँची। पेट का दद इतना बढ़ गया कि पडोगिया की काई भी जीपधियाँ मफान्त न हुई और अन्त में उमर मा में उ ही मुनिया के दशन की शुभ भावना पदा हुई और उमी दशा में यह अपनी माता धन्वा को सदा के लिए पुत्रविहीन करण परनाक को मिघार गया।

अन्त समय के शभ परिणामा व कारण सौम की आत्मा राजग्रहि गगर व प्रगिद्ध गामद्र मेठ की धम पत्नी भद्रा के उदर में आई। गामद्र यदुत ही धन्वा मेठ थे। उन्होंने भद्रा की सम्पूर्ण दाहर गह प्रमपूवन पूरी की। प्रभूति का समय निकट आया और भद्रा न दुम घड़ी में एक अति ही सुन्दर हातहार पुत्र रत्न को जन्म दिया। जिसका नाम शालिभद्र रखा गया।

शालिभद्र सेठ बहुत ही धर्मपरायण थे। उनका चित्त सदा जीव श्वर पूजा में ही लगा रहता था। उन्का व्यापार भी धारो आर फला हुआ था। इस कारण उन्का जगत ख्याति प्राप्त कर ली थी। जब शालिभद्र बड़े हुए तब पिता ने उनके विवाह की सची। गोभद्र की ख्याति के कारण प्रत्येक ध्यविा अपनी कन्या का विवाह शालिभद्र के साथ करन की इच्छा करन लगा। शालिभद्र के पास अटूट धन था और पुत्र भी सुदृढ़ अवयवा व परिपूर्ण बलवान और ब्रह्म स्तर कलाओं में निपुण हो चुका था। इसलिए उमने एक से एक

एक ताकत कन्याओं के साथ एक-एक करके शालिभद्र ने दत्तीन विवाह किये । अब तो शालिभद्र भानि-भाति क मासारिक सुख भागत लगे । यही तब कि उन्हे मूय के उदय और अस्त हाने तक का मान न रहा ।

शालिभद्र तो इस तरह विषयो में आसक्त था और उम आर सेठ गामद्र ने प्रभु दशा की अभिलाषा प्रगट की । ज्या ही व प्रभु दशन का गये और वही उन्हें बंराग्य हा आया और दागा ग्रहण कर ली । दीक्षा के बाद शीघ्र ही उनका निधन हो गया और वे स्वगस्थ हो गय ।

स्वर्गस्थ गामद्र मुनि की आत्मा ने ससारी पुत्र शालिभद्र की पूव जन्म की मुनि की स्त्रीरदान की पुन्याई अवधि जान स देखी और उस पर मोहित हो गई । तब तो उम आत्मा ने अपने पुत्र के भदार अपने दिव्य प्रभाव से भरना आरभ कर दिया ताकि उमके मुख की मामग्री मर्दव परिपूरित रह । इधर अपने वधव्य विषाद से दुखी होने पर भी, अपने प्राणप्रिय पुत्र ने मुख्यावभाग में किसी तरह की कमी न हा इस कारण शालिभद्र की माता मद्रा भी गृहस्थी के सारे कामकाज मम्हासने में व्यस्त रहने लगी और शालिभद्र अपने दिन मासारिक सुख में बिताने लग ।

एक दिन की बात है कि राजगृहि के राजा मम्राट श्रेणिर के दरबार में कुछ व्यापारी लोग पहुँचे और राजा का अपनी रत्न-कम्वले दिखाई । मोल पूछने पर व्यापारिया ने कहा कि राजन । कम्वलो का मोल मवा चाण सोनेया (सोन की माहर) है और उनका गुण यह है कि रत्नजडित हाने पर भी जय ये मैली हा जाती हैं ता अग्नि में धरने से ये साफ होती हैं ।

लोग विचार करे कि उस समय भारत में वस्तुआ के परस्पर विपरीत गुणों का समावेश कैसा किया जाता था। कम्बलों की मीमन मुन कर राजा अत्राण हो गये और उन्हें लेने से इन्कार कर दिया। तब तो व्यापारी लाग उदास हो गये और शहर के बाहर पनघट पर डेरा टाल दिया।

सेठ शालिभद्र की पतिहारिया पानी भरने को पनघट पर आई और परदशी व्यापारियों को उदाम देकर उनसे पूछा, 'भाई तुम लाग कौन हो और क्या व्यापार करते हो। तुम्हारे पर इतनी उदामी क्या है?' तब तो उन पतिहारियों से उन्होंने आद्य-न सत्र कहानी सुनाई। व्यापारियों की बात सुनकर पतिहारिया ने कहा 'भाई उदास हान की कोई बात नहीं है। इस नगर में सेठ शालिभद्र की माता भद्रा बहुत धनाढ्य और दयालु हैं उनके पास चन्डिये। वे तुम्हारे सत्र कम्बल ले लेवेगी।'

मह मुन व्यापारियों के हृदय में आशा के फूल फूले और वे उन पतिहारियों के साथ भद्रा सेठानी के यहाँ आये। उन्होंने अपने कम्बल और उनके गुण नेठानी को प्रतलाये। कम्बलों के अद्वितीय गुण मुन माता भद्रा ने पूछा कि 'हे व्यापारियों! ऐसे बितने कम्बल आपके पास हैं।' व्यापारियों ने उत्तर दिया 'माताजी! ऐसे कम्बल तो हमारे पास १६ हैं। माता भद्रा ने उनसे बत्तीम माँगी क्योंकि शालिभद्र की तो बत्तीम स्त्रियाँ थी। परन्तु उन लोगों के पास ३२ कम्बले न होने के कारण भद्रा ने उन सानहो कम्बलों को खरीद लिया और व्यापारियों का मुह माँगा माल चुकाकर प्रिदा किया।

अब उन १६ कम्बलो के ३२ टुकड़े कर माता भद्रा ने शालिभद्र की एक एक स्त्री को एक-एक टुकड़ा ओढ़ने का भिजवा दिया। साम की भेजी हुई वस्तु का जपमान न हो यह समझकर उन बहुधा ने उन्हें एक रात्रि को तो ओढ़ा और दूसरे दिन मवेरे अगम चुभन के कारण उन्हें ग्राहक फेंक दिया। सबरे ज्यो हि भाडने वाली भाडने की आई ल्यो हि उसकी दृष्टि इन कम्बलो पर पड़ी वह उसे बटारकर घर ले गयी। और दूसरे दिन उनका एक कम्बल ओढ़ कर राजा श्रेणिक के दरबार में भाडने के लिए गई। इस कम्बलो को भाडनेवाली के अग पर देख राजा को बहुत ही अचम्भा हुआ। वह मन ही मन मोचने लगा कि ओह ! जिन कम्बलो को मैं न खरीद सका उन्हें एक भाडनेवाली ने ले लिया। क्या मेरे राज्य में मुझमें भी घनाढ्य लाग रहते हैं। इस भाटन द्वारा को बुलाकर पूछना चाहिए। इतना विचार मन में आने ही राजा ने उसे बुलाया और पूछा कि यह कम्बल तूने कहा से पाई ? उसने सब बात जसी हुई थी वह सुनाई। उसकी बात सुन राजा की इच्छा हुई कि मेरी नगरी में इतना घनाढ्य सेठ रहता है उससे अवश्य मिलना चाहिये।

यह मोच राजा श्रेणिक अपने मथिया के साथ शालिभद्र के भवन की ओर रवाना हुआ। सूचना पाकर सेठानी भद्रा राजा के स्वागतार्थ रवाना हुई। अपने द्वार पर राजा श्रेणिक का देख अपने और अपने पुत्र के भाग्य की मन ही मन सराहना करने लगी। उसने पूरा सामग्री के साथ राजा का स्वागत किया तत्पश्चात् उसने नम्रता पूर्वक राजा को भवन में प्रवेश करने के लिये सज्जत किया। ज्यो हि राजा श्रेणिक ने पहले मजिन में प्रवेश किया तो उसकी मजाबट देख वह मन ही मन बहुत हर्षायमान हुआ, वह

मजिल चादी का रंगा हुआ था। दूसरा मजिल सोने का था उसे मोनियो से जडा हुआ चमचमाना देख राजा मन ही मन सकुचित होता और सात्रने लगता कि मेरे राज्य में इतनी बड़ी विभूति का म्वामी वमता है यह विभूति तो मेरे पास भी नहीं है यह पुरुष धन्य है और मैं भी धन्य हूँ कि मेरे राज्य में ऐसे भाग्य शाली पुरुष का निराम है।' इस प्रकार एक के बाद एक मजिल को पार करता हुआ राजा श्रेणिक सेठानी भद्रा के साथ चौथे मजिल पर पहुँचा जा स्फटिक का बना हुआ था। इस मजिल पर आते ही राजा का शका हुई कि यह तो अघाह पानी से भरा है इसकी परीक्षा के लिये राजा ने अपनी हीरे की अगूठी उसम डाली, अगूठी का आवाज तो हुआ मगर अगूठी स्फटिक के तेज में अदृश्य हो गई। तब राजा अगूठी देखन के लिये चकाचौंध सा हो गया। फिर कर जत्र भद्रा ने पूछा महाराज! क्या हुआ तब राजा बोला कि 'मरी हीरे की अगूठी यहा गिर गई है उसे देख रहा हूँ।' तब ता भद्रा न उत्तर दिया - महाराज! घबराइये न यही विराजिये भव आगे जाना तो और भी कठिन है शालिभद्र तो सातवे मजिल पर रहता है।

राजा को चही उठाकर पहले तो भद्रा ने एक छाव अगूठियो की भरकर लाई और विनय पूर्वक राजा को निवेदन किया कि 'महाराज! आपकी अगूठी तो मिलना कठिन है मगर इस छाव में जो अगूठी आपने मन भाये उसे गृहण कीजिये इतना कह वह शालिभद्र के पास गई और उसे कहा बेटा! अपने यहा नगर-नाथराजा श्रेणिक पधारें हैं उनसे मिलने चलो। तत्र शालिभद्र बोला

॥ मेरे ऊपर भी काई नाथ है? मैं तो अभी तक अपने का ही

हरमन्द माया या । यह शोक यह ५ उदात्त । आ गई और माया के बका विरायतवक यह शब्द अर्थ ५ विगत आया । शब्द के दो बंद हुए न हृदय से लगाया और उगवा मुख वृत्त उगरे काम की भृति भृति घनीय की । बहुत कुछ काशीयात हान के समान शब्द तो अपने महती की चोर शब्दा ही गया, पर कामिभक्त मन में चिन्तित ही मायन लया कि म दुर्भासी हैं कि इसी सम्यक्ति वाक्य भी अरे ऊपर माय यह लया अर वा एमी ललया करती चार्दित् विगत गिर पर माय न रहे । ' ह्यप्रकार मन में संसार भावना उगम ही म न अती उर-एक स्त्री को अतिदिन लत्रने लया ।

इस को कामिभक्त अती एर - एक स्त्री का लत्र रहे में कि छपर उनी कदम में उमरे कनवाई मोड छामद लने से । एक दिन कामिभक्त की बर्तन सुभदा उते भीमम जल न लान करती रही थी कि लगे अपने घाई की वाद आ गई और उमरे मांघ से अंगु की गरम-गरम दूधे लत्रमद मेर के बगुने पर गिरी । इस तरह छत्रमद न सुभदा की ओर दया कि लगे मुख की घड़ी में नर लत्रन क्यों ? उमने उगवा कारण पूछा तब बोली पतिभक्त । मैं तो अती माती लहमियों न माय अपने महवान में मुख का अनुवनीय अनुभव कर रही हूँ । लम्बु मरा भाई कामिभक्त मगर मुख को नितांरनि दे एर - एर स्त्री का लत्र ललम कर रहा है बर तो बेराय भावना में पूरित हो चुका है । मय तो छत्रमद हैं और बाए कि जब लेरा भाई बेराय लत्र गया है तो एकरम मबदा क्यों ली छान देना । लगे मातूम होता है कि यह कुछ कायना से काय कर रहा है । इस पर सुभदा ने लला माय । प्राय दिव । धार तो मुख के

१२१

में चूर हैं आप वैसे करो तो पता पड़े। इतना सुनने ही धनमद ने उन आठा म्रियो को बहूत कहकर उगी समय तज दिया और शालिभद्र की आर जा पहुँचे।

शालिभद्र व यहाँ पहुँचकर उससे कहा 'कायर'। जब बँराय्य का ही अन्तिम आश्रय हा चुका ता एक-एक स्त्री बया छोडता है। मे ता जाज ही आठा का परित्याग कर तुम्हारे पास आया है। चलो शुभ काम में दर बया? बहनोई के बचा मुन शालिभद्र भी उगी क्षण नीच उतरे और दोनो ने भगवान की शरण में आकर दीक्षा ग्रहण कर ली। थोडे दिन ही बाद धनमद तो माय सिधार और शालिभद्र सर्वाय सिद्धि देव गति पाये।

ग्रहरथ और विरोधी हिंसा

कौणिक और चेडा राजा का युद्ध

प्रभु महावीर स्थान स्थान में घर्मोपदेश देते हुए और श्रेणिकादि राजाआ की रानिया का दीक्षित करते हुए चम्पानगरी की आर पहुँचे। उन दिनो राजा कौणिक वहाँ राज्य करता था। उसकी माता का नाम काली था, प्रभु के आगमन का समाचार सुन उमने पूछा 'भगवन् मेरा लडका कालीबुमार मप्राम में गया हुआ है उसका काई समाचार मालूम नहीं हुआ इसलिए उसकी कुणल क्षेम जानने की मेरी तीव्र अभिलाषा है कृपाकर उसे कहिए।

सबन भगवान बोले 'कि उसका तो शत्रु के ओर से आये हुए एक ही बाण में शरीरान्त हो गया' यह सुनकर काली माता मूर्छित हो गई। कुछ गमय के बाद वह होश में आयी और

बानी भगवन् राजा कौणिक की सम्मति लेकर मैं दीप डगर
 रहती । उसने वसा ही किया और उसने पीछे नौ रुद्रि -
 भा दीक्षा ग्रहण की ।

जित मयाम म कालीकुमार मारे गये उसका मर्त्य
 शास्त्रानुकूल रूप प्रकार है कि बहुत समय तक राज्य
 राजा धृजिक को उसके पुत्र कौणिक ने राज्य के सत्त
 पकड़कर कद में डाल दिया । कौणिक के दस भा
 उनके पास आकर कौणिक ने अपने नीच कार्य की
 वत कही और उन्हें प्रताभन दिया कि इस राज
 बनत ही म मारा राज्य अपने भाइया में
 बाँट दूंगा और बाद में उसने अपना सारा
 में बाँट दिया ।

पिता का राजपदी बनाकर, आप
 माता के पाम उसका आशीर्वा लेने का
 नीचता से माता का बहुत दुख हुआ ।
 बहुत फटकारा और कहा— 'बेटा !
 पितृ भवित है । इसी दिन के लिए
 पाल पोमकर बड़ा किया था । तुम
 जय तू मरे गभ में आया तब ही से
 में नीचता आन लगी थी और
 गभ का बालक बहुत ही नीच प्रकृ
 पदा हाने ही मने, अपनी कूत्र
 धूँडे में डमवा दिया था । मगर
 को मानूम हुए तुझे वहाँ से उ
 पाला पासा और इतना बड़ा कि

ता लगा
 'बहुत
 'स करा ।'
 और हार
 का भी
 ही मिल
 हर हो
 षडा ने
 राजा-
 जा ।
 मव
 १ ।
 बोले

में डलवा दिया और मेरा आशीर्वाद लेने आया है, तुम्हें साख्त वार धिक्कार है। तू इसी समय जा अपने कृपालु पिता को बघनो म मुक्त कर।'

माता के ऐस मार्मिक वचन सुन कौणिक ने अपनी तलवार उड़ाई और अपन पिता का मुक्त करने के लिए चल दिया। पिता ने ज्याही उमे नेंगी तलवार हाथ में लिए हुए आता देखा त्योही उनके मन में शंका प्रतिशंकाएँ उठने लगी। वे साचने लग कि पहले तो दराने मुझे बंद धाने में डलवाया और जब यह नीच मुझे जान से वंचित करना चाहता है। ऐसा मन में विचार कर के सोचने लगे कि 'अत्याचार और अत्याय चाहे वह बड़े से हा या छोटे से, राजा से हो अथवा प्रजा से, ऊँच से हा या नीच से, वह किसी भी हालत में क्षमा योग्य नहीं होना चाहिए। अत्याय और अत्याचार का सहन करने वाला या उनको महभाग देने वाला अत्यायी और अत्याचारी से भी बुरा और भयकर हाता है। कीर पुण्य के लिए पराधीनता का जीवन त्याज और असह्य है।' इतना विचार मन में आते ही राजा ने अपनी हीरे की अगूठी की ओर देखा और अपने इष्ट का स्मरण कर उसे चूस डाला। चूसते ही राजा तो परलोकवासी हो गये और कौणिक पछताते रह गये। इसी रज में कौणिक ने अपनी राजधानी राज्यप्रति से हटाकर चम्पापुरी में कायम की और वही रहने लगा।

अब तो सम्पूर्ण राज्य का स्वामी राजा कौणिक हो गया और उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपना सम्पूर्ण राज्य ग्यारह हिस्सों में बाँट दिया राजा कौणिक का एक छोटा भाई और था उसका नाम बहलकुमार था और वह राजा कौणिक के पास रहता था।

राजा कौणिक ने एक सुन्दर हाथी तथा एक बहुमूल्य हार उस द
 लवा था कि राजा श्रेणिक के सम्पूर्ण राज्य की अनुपम विभूति
 था। यह राजा कौणिक राज्याधिकारी हुए तो उन्हें लोभ ने भेगा।
 उनकी इच्छा उस हाथी और हार का लेने की हुई। लोभ दुनिया
 में क्या नहीं कराता, यह तो आत्मा का भयकर रिपु है। क्योंकि—

न पिशाचा न डाकिया न भुजगा न वृत्तिका ।

सम भ्रात यनिर मनुज यथा साभा धिय रिपुः ॥

कौणिक राजा की यह दुईच्छा जब बहलकुमार को मालूम
 हुई तब वह अपनी उक्त दोनों बहुमूल्य चीजों का लेकर चला
 निकला। भाकर वह अपने नाना बगानी के राजा चेडा के पास
 चला गया। राजा चेडा बहुत घम पराका एवं श्रेणिक का बहुत
 अनुयायी था। उनके आसपास के इतर राजागण भी यह उम्मीद
 थी जब राजा कौणिक को बहलकुमार के चले जाने का पता चला
 तब उसने राजा चेडा के पास दूत भेजे और कहा कि 'बहल-
 कुमार हाथी और हार लेकर चला जाया है उसे कारिब बरो।'
 इस पर राजा चेडा ने उत्तर दिया कि यदि तुम हाथी और हार
 लेना चाहते हो तो अथ भाइयों के समान बहलकुमार को भी
 अपने राज्य का हिस्सा दो। अथवा वे चीजें तुम्हें लौट कर
 सबतीं। इस उत्तर का पाकर राजा कौणिक आपसे मे आकर आ
 गया। उसने तुरत लड़ाई की तैयारी कर ली। इतर राजा चेडा, ने
 भी भविष्य विचारकर अपनी सेना को गया जयन प्राप्त करने
 की का महायत्नाय सग्राम के लिये तैयार हो जाने का संकेत दिया।
 य राजागण सब जन धर्मो थे। वे राजा चेडा के आशुतोष के
 एकत्रित हुए और युद्ध के आशुतोष पर उन्होंने विचार किया कि
 शास्त्र और अस्त्रों का विचारकर के राजा कौणिक के

'राजन्' हम लोग जैन धर्मो हैं जिमना मूल तत्व 'अहिंसा' है। अहिंसा कायर जीर नित्रला का धम नही है। वह तो चिरकाल से वीर गुण्पा का धम रहा हुआ है। हम लाग तो गृहस्थ हैं। गृहस्थी विराधी हिंसा का त्यागी नही हो सकना। इस युद्ध में ता विरोधी हिंसा का सामना है। यदि कोई आततायी उपद्रवी अपना धन, राज्य या अपने शरणागता पर आक्रमण करे तो उसे हटाना वाज्य है। न्याय की प्रतिष्ठा ही वास्तविक अहिंसा की प्रतिष्ठा है। आखी की प्रतिष्ठा है। आघात के सामने अन्याय हाता देकर जो मौन रहता है वह अहिंसा का भक्त नही है। अन्याय और अत्याचारा का मिटाकर शान्ति फलाना और दु खियो के दु ख का दूर करना यह अहिंसा की सच्ची प्रतिष्ठा है। इसी प्रतिष्ठा को रक्षा करना सच्चे जैनी एव क्षत्री का धम है' इत्यादि वचन कह के प्रहलकुमार की रक्षा के हेतु सम्पूर्ण युद्ध सामग्री के साथ युद्ध स्थल में उतर पडे।

उधर कौणिर भी अपनी सेना लेकर चेडा राजा पर चढ आया। उस दाना तरफ से युद्ध आरम्भ हा गया। धम युद्ध के नाते रथो से रथो और घुडमवार से घुडमवार, पैदल सेना से पैदल सेना भिठ गयी। भयकर युद्ध हुआ और इसी युद्ध में बाण द्वाग वालीकुमार मारे गये जैसा कि भगवान ने रानी वाली माता को ऊपर दर्शाया है।

अभिप्राय यह है कि जैनियो का अहिंसा धम यह कभी नही कहना कि अपनी जान, अपने माल, अपनी औरत, अपने धम अपने नातेदार जयवा अपने शरणागतो पर आई हुई आपत्तियो का दूर करने के लिए 'अहिंसा' बाधा पहुचाती है। अपितु 'अहिंसा धर्म' की आड में कायर व दरपोक वाकर अन्यायो

और अत्याचारो को बढ़ने देना तो घोर हिंसा की वृद्धि करना है जिसे जन धर्म में महान पाप का हेतु माना है । कसाइया के आधीन होकर निरपराधी जीवो का विना कारण वध करना जनियो के लिये महान हिंसा एव अघर्म है । परन्तु अपराधी शत्रु अथवा किसी आततायी को उचित दण्ड देकर दम में दम रहते जीवमात्र को शांति पहुँचाना और दुनिया का अभीत बनाना जनियो का परम धर्म है । अहिंसा वीरो का सबल और अमोघ शस्त्र है । इसी शस्त्र के द्वारा संसार में अपूर्व शान्ति कायम रह सकती है जिसका प्रत्येक प्राणी अनुभव करता है । इसका तिरस्कार होते ही अशांति की प्रचण्ड ज्वाला भभक उठनी है । इसीलिए विश्वशांति के महान उपासक इस शताब्दि के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी इसी प्रबल शस्त्र 'अहिंसा' का सहारा लिया जो अनुकरणीय है ।



गोशाला का पुनर्मिलन

और

पश्चात्ताप

भगवान महावीर क कथनानुसार तप करके गोशाला ने 'तेजोलेश्या' प्राप्त कर ही ली थी और उसे 'अष्टागनिमित' की सिद्धि भी प्राप्त हो चुकी थी जिसका वणन हम पहले कर आये हैं । इन्ही दो शक्तियों द्वारा वह अपने 'आजीविक' सिद्धान्त का प्रचार करता चला जा रहा था और अपने को चीरोसवा तीर्थ-कर कहता था । तेजोलेश्या से तो वह अपने विरोधियों को भयभीत बनाया हुआ था और अष्टागनिमित से वह भूत और भविष्य की बातों का प्रता देता था इसीसे बहुत से लोग उसके अनुयायी बनते चले जाते थे क्योंकि 'समत्वार का नमस्कार' वाली कहावत चरिताथ हो रही थी । जहा कही वह जाता वहा ही वह अपने को गग्हित कहता तथा उसकी प्रतिष्ठा भी उसी प्रकार होती थी ।

इधर उधर घूमते घूमते एक दिन प्रभु महावीर श्रावस्ती की आर जा पधारे । वहा गोशाला भी आया हुआ था । उसके अष्टाग निमित्त ज्ञान की चर्चा चहु ओर फल रही थी । लोग भी घडाघड उसने शिष्य बन रहे थे । प्रभु की आज्ञा मे गोचरी को आये हुए गौतमस्वामी ने सुना कि यहा कोई गाशाला आया हुआ है जा अपने को सर्वज्ञ 'जिन' कहता है । वे तुरन्त प्रभु के पास लौटकर गये और उनसे पूछा भगवान्, क्या गाशाला सचमुच 'सर्वज्ञ जिन है ।' भगवान् वाले, 'वह तो मखली पुत्र अजिन है । बहुत दिन पहले वह मेरे द्वारा ही दीक्षित और शिक्षित हुआ है । परन्तु पूर्ववृत्त कर्मानुसार उसका स्वभाव ही वैसा है । अष्टाग निमित्त के याग से उसकी प्रसिद्धि फल रही है पर वह जरिहन्त नही है ।' यह सुन गौतम स्वामी की शका समाधान हा गई ।

एक दिन गोशाला की भेंट आनन्द मुनि से हो गई । उसने आनन्द मुनि को कहा 'मुनि ! देखो तुम्हारे गुरु तो मुझे मखली पुत्र कहते हैं और आप धर्माचार्य बनते हैं । तुम्हारे गुरु को दूसरे की निन्दा में धम दिखता है परन्तु उन्हनि मेरे तेजोलेश्या का प्रभाव नही देखा है जा उन्हें बात की बात में भस्म कर सकती है । अगर वे मुझ से शत्रुता करेगे तो उन्हें और उनके अनुयायियों को उसका फल चखना पडेगा ।' यह सुन आनन्द मुनि प्रभु के पास आये और प्रभु से सब हाल कह सुनाया और पूछा 'भगवान् क्या उसकी तेजोलेश्या में इतनी शक्ति है कि वह सबजो का भी भस्म कर सकता है अथवा वह अपनी केवल बडाई ही मारता है ?' इस पर प्रभु ने उत्तर दिया कि 'जरिहन्तो के सिवाय सचमुच उस लेश्या में इतनी शक्ति है कि वह चाहे जिसे भस्म करदे । अतः सब ... कि

गोशाला के साथ कोई भी व्यर्थ का वादविवाद न करे। आनन्द मुनि ने वसा ही किया।

इतने में गोशाला भी प्रभु के पास आ पहुँचा और बहने लगा 'ऐ काश्यप ! यहाँ के लागो के सामने तुम मुझे मखली पुत्र गोशाला रहते हो और अपना शिष्य कह कर मुझे पाखंडी बताते हो। मैं तुम्हारा शिष्य गोशाला अवश्य था। वह तो स्वर्गवासी हो चुका। जब उस सुन्दर शक्तिशाली शरीर को मने निर्जीव दया ता मने अपना शरीर ता तप के बल से वही छोड़ दिया और उस मृतक गोशाला के शरीर में प्रवेश कर गया। इसी से तुम भ्रातृ म पड हा। मैं तो अरिहन्त मुनि हूँ।'

नव भगवान् बाले— 'गोशाला ! या मिथ्या बोलकर क्यों तुम अपनी ही आत्मा का हनन करते हो। मुझसे तुम्हारी बोर्ड भी बात छिपी नहीं है।'

इस पर गोशाला बहुत ही श्राधित हो गया और बहने लगा कि 'क्या तुम्हारी आ ही गई। मुह वन्द करो नहीं तो अभी मटियामेट कर डालूंगा।

गोशाला की इस प्रकार घृष्टता देख प्रभु के दो मुनियो को बहुत ही बुरा लगा। उन दोनो ने अपने गुरु का अपमान देख शिष्या रूपेण उसे कुछ बोल बैठे। इस पर उसने तुरन्त अपनी हेजोलेश्या उन दानो मुनियो की ओर छाडी और बात की बात में के आत्मध्यानी बनकर स्वर्ग सिधारे। इस पर तो गोशाला और भी गवित हो गया। अब तो उसके क्रोध का

॥ न रहा वह तो भगवान पर ही अपने वाक्वाणो की

दर्प करने लगा । इस बार भगवान ने ही उसका उत्तर देना उचित समझा, वे बोले 'गोशाला ! अपने शिक्षा और दीक्षा गुरु से ही ऐसा घृणित व्यवहार ? जिससे तूने शास्त्री का ज्ञान पाया तेजोलेश्या की प्राप्ति को उसके प्रति ऐसा कठोर व्यवहार तुम्हें शाभता नहीं । यह तो ज्ञान की निरालता है । शोक अज्ञान का लक्षण है । ज्ञान और तप की शोभा विनय और शांतता है । अतः अब तू भी चेत ।'

इतना सुनने ही उसके क्रोध का पारा और बढ़ गया । इस बार उसने भगवान क प्रति ही अपनी तेजोलेश्या का व्यवहार किया । परन्तु भगवान ने घनघाति कम तो नाश ही ही चुके थे, उन पर इस लेश्या का क्या असर होने वाला था । वह अब तो पूण वेग से गोशाला के तरफ ही लौटी और उसे भस्म करना आरम्भ कर दिया । गोशाला हिम्मत का पक्का हो चुका था । लेश्या छोड़ने के बाद वह प्रभु से कहने लगा कि 'अब कमे वचोने, छे महिने बाद ही इस शक्ति द्वारा तुम्हारा निघन हा जावेगा ।'

इस पर सर्वज्ञानी प्रभु ने उत्तर दिया कि 'मेरी आत्मा तो इस समय अहन्तावस्था भोग रही है और वह ठीक सालह वष इसी अवस्था में रहेगी परन्तु तेरा ता निघन आज से सातवे दिन हो जावेगा । इसलिए तू अपने क्रुद्ध स्वरूप का स्मरण कर । अपनी कुत्सित भावनाओं का ध्यान तज दे जिससे तेरा अंत सुधर जावे ।'

तेजोलेश्या के उलट प्रभाव से पीड़ित होकर गोशाला मूक सा बन गया था । गौतमादि शिष्यगण उसे बार बार प्रबोधित करते थे पर छे दिन तक उस पर कुछ भी प्रभाव नह

उसके जीवन का तब अन्तिम समय आया तब उसके परिणामो ने पलटा छाया। उसके हृदय में विषेक उत्पन्न हुआ। उसने उसी क्षण अपने चेली का एकत्रित किया और कहने लगा 'शिष्या! सचमुच इतने समय तक मैंने अपनी आत्मा को और जगत् को धाम्ना दिया। मैं अभिमानवश अपने सबज्ञ गुरु भगवान महावीर व सत्सिद्धान्ता के प्रतिकूल चला और दुनिया को भी गुमराह बरता रहा। मैंने आज तक अपने नाम को भी छिपाया। मैं सचमुच मँदालि पुत्र गोशाला ही हूँ। अज्ञानता के वशीभूत हो मैंने अपने आपको 'जिन' और 'अरिहन्त' कहलाने का थाया स्वाँग रचा। भगवान महावीर ही सच्चे सर्वज्ञ हैं। यदि अपना भला चाहते हैं शीघ्रातिशीघ्र उनके शरण में जाकर उनका सत्सम अँगोकार करो, जिनमे मेरी भी इच्छा पूरी होकर शान्ति मिले। यही मेरी अन्तिम अभिलाषा है।' शिष्या ने अपने गुरु की आज्ञा अक्षरशः पालन की और वे सबके सब भगवान महावीर व शिष्य बन गये। इस तरह पयध्रष्ट गोशाला ने भी अपने अन्तिम परिणामो को सुधारकर सातवें दिन सत्समि प्राप्त कर ली।

वेदनीय काम के प्रभाव से भगवान की छै माह से तीजोलेश्या के कारण शरीरावस्था कुछ बिगड़ रही थी, सो भी सिद्ध अणगार मुनि द्वारा लाये हुए विजोरे के पाक का खाने से स्वस्थ हो गई।

गौतमस्वामी और लब्धि प्रभाव

भगवान महावीर स्वामी के जीवन चरित्र में गौतमस्वामी और उनके प्रश्न उत्तर एक विशेष स्थान रखते हैं। जब से

॥नु५॥ इन्द्रभूति प्रभु महावीर के शिष्य हुए और उनका

नाम गौतम पडा तत्र से स्थान-स्थान में उनकी शंका और प्रभु के उत्तर का उल्लेख पाया जाता है। गौतमस्वामी ने समय-समय पर अपनी शंकाओं का निराकरण भगवान से कराया है। इन्हीं प्रश्ना की संख्या कल्पसूत्र में छत्तीस हजार बताई हैं, जो आद्यन्त भगवती सूत्र में एकचित्त व्रणन की गई हैं जिन्हे पढ़कर आध्यात्मिक जगत अचम्भे में पट जाता है।

गोशाला के निधन हो जाने के पश्चात गौतमस्वामी ने भगवान से पूछा, 'प्रभु तेजोलेश्या से वे दो मुनि और गोशाला मृत्यु पाकर कौन - कौन सी गति को प्राप्त हुए हैं सा कहिए।'।

प्रभु ने उत्तर दिया कि गौतम ! 'पहले मुनि सर्वानुभूति ता आठवे स्वर्ग में देवरूप जाकर जमे हैं और दूसरे मुनि सुनक्षत्र अच्युत नामक देवलोक में देव हुए हैं। गोशाल का जीव अत समय सुपरिणामो के योग्य से अच्युत स्वर्ग में गया है। अन्त में वे सब मानव भव प्राप्त कर अपने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके मुक्ति पावेंगे।'।

गौतमस्वामी प्रभु द्वारा दीक्षित होने पर प्रभु के प्रथम गणधर हुए। ये चार ज्ञानधारी मुनि चौदह पूर्वधारी विद्या-निधान जिन - जिन को प्रतिबोध करके दीक्षा देने वे सब केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते थे परन्तु भगवान के ऊपर मोहनी क्रम के वश म स्नेह होने के कारण खुद का केवल ज्ञान प्राप्त नहीं होता था।

एक समय (गौतमस्वामी ने) भगवान की देशना में ऐसा सुना कि आत्मलब्धि द्वारा जो अष्टापद तीर्थ की यात्रा करे सो उसी भव म मोक्ष पावे। अष्टापद बत्तीस कोस लम्बा ऊँचा

पवन है वहाँ पैदन तो कोई चढ़ ही नहीं सकता, परन्तु लब्धि के याग से उग पर चढ़ सक्त हैं । गौतमस्वामी अपनी परीक्षा करने के लिए प्रभु की आज्ञा लेकर उम आर खाना हुए और अपनी लब्धि द्वारा मूय की किरणा का अलम्बनकर उम पवत पर चढ़ा नग जिसके आठ पगधिये थे । जय पहले पगधिये पर पहुँचे तो देखा कि पाँच भी एक तपस्वी कोडिण तापस प्रमुय एवान्त उपवास की तपस्या कर रहे हैं । दूसरे पगधिये पर दिप्त नाम व तपस्वी पाँच सौ शिष्य महि दा उपवास के घाद पारणा करने की तपस्या करने दोग्य पडे और तीमरे पगधिय पर शत्रालि नाम तपस्वी व पाँच सौ शिष्य तीन दिन के उपवास व घाद पारणा करने की तपस्या म जुटे दिखाई दिये । मगर उमने आग चढ़ने का कोई गमय नहीं था । गौतम स्वामी को दद्य इन तपस्विया व मन में चिन्ता हुई कि तप से हम लोग वृण हा चुके ता भी इस पवत पर न चढ़ सके तब तो यह स्थूल शरीर वाना कैसे चढेगा । परन्तु गौतमस्वामी को अपनी लब्धि द्वारा दर भी न लगी और अष्टापद पर चढ़ गये । वहाँ भरत चक्रवर्ती द्वारा उराय हुए उन्होने चौबीस तीथकरा के विम्ब श्रीजिन प्रतिमा का नमस्कार करके तीथ एव उपवास किया । रात्रि विश्राम वही किया और वही श्री वज्रस्वामी के जीव जूभक देव का प्रतिवाद्य किया । प्रात काल हाते ही देव दशन कर जय उतारने लगे तो वे पाद्रट सौ तीन तापस गौतम स्वामी का महात्म्य देय उनके शिष्य हा गय । दीक्षा देने के बाद जय गौतमस्वामी ने उनसे पूछा, भा तपस्विओ ! आज तुमको किस आहार से पारणा करावे, तब उत्तर में उन्होने खीर माँगी । गौतमस्वामी ने 'अक्षीण महानसी लब्धि' द्वारा एक ही

पात्र से उन सबको पारणा कराया । उम समय तैले के उपवास वाले पाँच सौ एक तपस्वियों को गुरु का महारम्य विचारते-विचारते ही केवल ज्ञान हो गया । इसी तरह भगवान का समवसरण देखते ही बंले की तपस्या वाले मुनियों को और भगवान की घाणी सुन एकान्तर उपवास वाला को केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई । इस प्रकार पन्द्रह सौ तीन मुनि भगवान क समवसरण आये और तीन प्रदक्षिणा देकर केवलियों की परिपद में चले गये । गौतमस्वामी ने भगवान की वन्दना की और नव-दीक्षित उन पन्द्रह सौ तीन तपस्वियों वा प्रभु की वन्दना करने को बुलाया । तब भगवान बोले, हे गौतम ! केवलियों की अशांतता मत कर । इस पर गौतमस्वामी बोले, स्वामिन् ! ये नये दीक्षित तो केवली हा गये पर मुझे केवल ज्ञान क्या नहीं हाता ? प्रभु ने उत्तर दिया, गौतम ! तू मेर पर स्नेह छोड दे तो तुम्हे भी केवल ज्ञान हा जावेगा । इस पर गौतमस्वामी बोले भगवन् ! मुझे केवल ज्ञान से कोई मतलब नहीं । मेरी अभिलाषा तो यही है कि आप पर मेरा स्नेह बना रहे ।

ऐसे गुरु भक्त गौतमस्वामी ने ऐवन्तकुमारादि अनेक जीवा का प्रतिबोधित किया जो अन्त में केवल ज्ञानी बन शिव गति के वासी हुए । गौतमस्वामी का चरित्र भी पढन और मनन करने योग्य है परन्तु जैन शास्त्रा में इनके चरित्र की छटा बहुत बिरलता स पायी जाती है जिम्का संगठित चरित्र बनाना परम आवश्यक एव हितकारक प्रतीत होता है ।

अन्तिम देशना और परिणाम

छपस्त अवस्था में बारह वर्ष तक प्रभु महावीर ने अपने चरित्र से किस धीरता और वीरता के माध मोन रह कर

अखण्ड ज्ञान का पाठ पढाया गा तो पाठको को तो भली भाँति मालूम ही हा गया । केवल ज्ञान प्राप्त कर प्रभु ने अपने निर्वाण तर हिंसा को दूर भगा कर आव राजा महाराजाओ को अहिंसा की गुरुदर छाया में विम प्रकार प्रवेश कराया सो भी पाठना से अब छिपा नहीं है ।

इस भरतखण्ड म अहिंसा का सतन् उपदेश देते हुए, भिन्न-भिन्न स्थानों में आद्रकपुर के राजकुमार, दशार्णपुर के दशारणभद्र राजा इत्यादि का दीक्षित करते हुए ब्यानीस की अन्तिम चतुरमासी के समय प्रभु महावीर पात्रापुरी में हस्तिपाल राजा की जीण राज-सभा द्वाणमडि में आकर निराजे । इस समय भगवान के इन्द्रभूति प्रमुख १४ हजार साधु ३६ हजार माध्विया, बारह व्रतधारी, एक लाख उनसठ हजार श्राविकाए थी । इनम स ३१४ पूवधारी 'जि' के समान अधरो की याजनाओ को जानने वाले १३०० अवधज्ञानी, ५०० मन पर्यवज्ञानी, सात सौ बबली, सात सौ विक्रयलब्धि धारक साधु, सात सौ अनन्तर विमान स्वय में जाने वाली और चार सौ विद्वानवादी थ जिन के साथ इन्द्रादि देव भी वाद करते में असमथ थे । इनक अतिरिक्त लाखो नर नारी ऐसे थे कि जिन्होंने भगवान के धार्मिक सिद्धांतों को अन्त करण से अपनाकर अपने दैनिक व्यवहार में उतार लिया था । प्रभु के स्वहस्त दीक्षित मात सौ साधु और चौदह सौ साध्विया मोक्ष गये । ग्यारह गणधरा म से इन्द्रभूति (गौतम) और सुधर्मा स्वामी को छोडकर शेष नौ गणधर इस समय तक मोक्ष सिधार चुके थे ।

जत्र भगवान अपना अन्तिम उपदेश देने के लिए पधारे । इन्द्र काशी देश का स्वामी मल्लकी गोपीय नव राजा

तथा कौशल देश के लेखकीय नव राजा इस प्रकार अनेक छोटे बड़े राजा महाराजा एकत्रिण हुए और भगवान की अमृतवाणी सुन उन्होंने अपना जीवन सफल किया ।

इस उपदेश में प्रभु ने भव्य जीवों के उपकाराय चार पुरुषाय अर्थात्— धर्म, अथ, काम और मान्य का दिव्य सदेश ससार के कल्याणाय मुनाया । जिसमें अथ और काम ये पुरुषार्थ तो मनुष्य सरलता से बचपन से ही कुछ न कुछ साध लेता है । परन्तु धर्म और मोक्ष ये पुरुषार्थों का काय कारण सम्बन्ध होने से कुछ कठिनाई जाती है धर्म मोक्ष का कारण है । जो धर्म जीवात्मा को मान्य तक नहीं ले जाता वह धर्म धर्म ही नहीं कहला सकता । अस्तु ।

प्रभु महावीर ने अपनी अंतिम देशना में धर्म पुरुषार्थ के दस लक्षण वणन किये हैं वे उस प्रकार हैं— (१) उत्तम धर्मा (२) उत्तम मार्दव अर्थात् मृदुता (३) उत्तम आर्जव अर्थात् सरलता, निष्कपटता (४) शौच अर्थात् आत्मा की अतर्शुद्धि और बहिर्शुद्धि दोनों (वहाँ किसी किसी शास्त्रों में साधवे अर्थात् लघुता याने निर्मोहतो को बताया), (५) सत्य अर्थात् सच्चाई (६) सैयम अर्थात् इन्द्रियो को वश में करना (७) तप अर्थात् उपवास नियम योगाभ्यास इत्यादि (८) त्याग अर्थात् बाहरी वस्तुओं से मन को हटाकर आत्मज्ञान में तत्पर होना (९) आकञ्चन अर्थात् निर्लोभता, निर्व्यर्जिता याने परिग्रह रहित होना (१०) ब्रह्मचर्य अर्थात् शील धर्म सेवन करना । इन दसों अंग का सीधा साधा निवृत्तम सम्बन्ध आत्मा से है । और इही क सहारे यह आत्मा अपने निज स्वभाव में आकर परमात्मपद

अर्थात् मोक्ष तो प्रातः कर लेता है। और भय मागर की बँटकीण उलभना से सदा के लिए छुटकारा पा जाता है।

तत्पश्चात् गीतमस्वामी ने प्रभु से अवमपण काल के पाँचवे और छठे आरे का वणन पूछा। प्रभु ने उमका भी उत्तर अद्यो-पान्त वणन किया। इसका बाद प्रभु ने गीतमस्वामी को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध करने के लिए एक पास की बस्ती में भेजा। प्रभु आज्ञा धारण कर के देवशर्मा ब्राह्मण का प्रतिबोधित करने के लिए चले गये और रात्रि को वही ठहर गये।

वह रात्रि कार्तिङ्क कृष्ण अमावश की थी। उसी रात्रि में भगवान ने अपनी श्रीमुख से सुख विपाक और दुःख विपाक के पचपन अध्याया का प्रतिपादन किया। इसके अतिरिक्त छत्तीस अपृष्ठ व्याकरण का प्ररूपण भी विना प्रश्न के ही किया। जब इस प्रकार जखड दशना उस रात्रि में प्रभु कर रहे थे कि इन्द्र का सिंहासन डगमगाया। वह तुरन्त समझ गया कि भगवान का निवाण काल निकट आ पहुँचा है। उस फिर तो वह शीघ्रातिशीघ्र अपने परिवार सहित प्रभु की सेवा में आकर उपस्थित हुआ। वह दना नमस्कार कर प्रभु से विन्ती करने लगा कि 'हे भगवान ! आपकी राशि पर दो हजार वय का भस्मगृह आया है उसके आने से संसार में आपत्तियों का भरमार हो जावेगा। साधु माध्वियों का मान न रहगा। धर्म में रचि हट जायेगी इसलिए आप अपनी आयु दो घड़ी के लिए बड़ा लीजिए जिससे वह ग्रह आपकी उपस्थिति में आ जावे तो आपके तप के योग से वह विलकुल निस्तेज होकर अनर्थ न

इस पर प्रभु ने कहा— शकेन्द्र ! यह तुम्हारा माह मात्र है । आयु तो कर्माधीन है । अनन्त बलवीर्य वाला भी उमे न घटा सकता है और न तिलभर बढ़ा सकता, और न कभी ऐसा हुआ है न कभी होगा ही । भवितव्यता सा प्रयत्न है । जो होने वाला है वह होकर ही रहेगा । जब यह भस्मगह उतरेगा, उसके बाद पुन साधु साध्वियों का उदय पूजा मत्कार होगा और अहिंसा धर्म का झंडा फहरायेगा । कदाचित् उक्त वाक्य का संकेत इसी काल में हो जय कि सम्पूर्ण भारत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसा के बल पर ही राजनैतिन वानावरण प्रकाश पा रहा है ।

इस प्रकार शकेन्द्र को समझाकर प्रभु ने पहले स्थूल मन वचन के याग का रोक लिया फिर वाया के योग में स्थिर हुए । पश्चात् मन वचन और वाया के मूढम व्यापारों को अपने वश किया और शुक्ल ध्यान की चौथी अवस्था में अपने अवशेष कम वाघनों से बिलकुल रहित हो वातिव अमावस्या की रात्रि के पिछले प्रहर में निवाण पद, जिससे श्रेष्ठतम दूसरा कोई भी नहीं है प्राप्त किया ।

जब भगवान महावीर का निर्वाण कल्याणक हुआ तो नौ लेखकीय और नौ मत्स्यकी राजाओं ने तथा दस देवताओं ने बड़ी धूमधाम से भगवान का निर्वाणोत्सव मनाया । आत्मवान का करानेवाला भावरूपी प्रकाश तो अब रहा नहीं, इसलिए रत्नादि द्रव्य पदार्थों द्वारा ही इस भूमण्डल का प्रकाशमान किया गया । वस इसी दिन से दीपावली उत्सव मनाने की प्रथा चल पड़ी जा हर साल यथावत् भारतवर्ष में धूमधाम से

जाती है। यह दीपावली (दीवाली) उत्सव भगवान महावीर के ज्ञान रूपी प्रकाश का दान है जो आजकल रत्नादिको के अभाव में दीपका द्वारा मनाया जाता है। इसके पहले दीवाली त्योहार का उल्लेख भारत के किसी भी धर्म - शास्त्रों में नहीं मिलता। पश्चात् धर्मावलम्बियों ने इसी त्योहार को अपने शास्त्रों में यथावन ममयानुसूल अपना लिया।

भगवान महावीर के कार्तिक वदी १५ की रात्रि का निर्वाणपद प्राप्त हो जाने के बाद दूसरे दिन कार्तिक शुदी २ को भगवान की बहिन सुदर्शना ने अपने भाई राजा नदिबघन को भाजन करार शान दूर कराया। उसी दिन से लोक में भाई दूज पर्व चालू हुआ।

गौतमस्वामी को केवल ज्ञान

प्रभु की आज्ञा लेकर गौतमस्वामी ता देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध करने के लिए गए हुए थे और जब उसे प्रतिबोध करके वापस लौट रहे थे, तब उन्होंने अचम्भे के माथ इस भूमण्डल का रत्नो से प्रकाशमान हात हुए देखा। परन्तु उनका अत करण काँच के समान बिलकुल उज्ज्वल था। भगवान के निर्वाण की घटना का प्रतिग्रिम्य उनके अत करण पर राह चलते - चलते पडने लगा। लोगों द्वारा सुनने के बाद तो उनके मन पर ऐसा विचित्र प्रभाव पडा कि (भगवान पर अत्यधिक स्नेह होने के कारण) वे ससार में साहम हीन हो गये। उनका हृदय शोक और सताप से भर गया। उनके हृदय में नाना प्रकार के भाव तरंगों की धूम - धूम। वे दुषी होकर मन ही मन कहने लगे हे भगवन् !

मने तो गुरु, देव, कुटुम्बी एव अपना सर्वोत्तर आप ही को सम रखा था ऐसे समय में तो कुटुम्बी जन सब पास बुला लिये ज हैं यह लोक व्यवहार है, परन्तु प्रभु ! आपने तो मुझे उल अपने पाम से हटा दिया अर्थात् लोक व्यवहार तक को न पाला । हे प्रभु ! आपको निर्वाण ही में पधारना था तो मैं सम्मुख भी बैसा कर सकते थे मैं तो उसमें बाधा पहुँचा ही न सकता था । फिर ऐसी कृपा क्या न की । हाय ! यह सब असार है यहाँ कोई भी किसी का चिरस्थायी रूप बनकर न रह सकता । सब ही को अपने अपने मार्ग से जाना हागा ।'

इस प्रकार भाति -- भाति की भावना उनके मन में अ ही प्रभु के प्रति उनकी जो ममता थी वह छिन्न -- भिन्न हो ग और उहे केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया ।

केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद गौतमस्वामी पूरे बा वष तक इस ससार में विचरते रहे । स्थान-स्थान में फिर भव जीवों को प्रतियोगित किया । अहिंसा का व्यापक इही के समय में भारत में व्याप्त हो गया था । ससार भर शान्ति फैल गई । पूण बारह वष तक प्रचार -- काय करके 5 गौतमस्वामी भी मोक्ष पद का प्राप्त हो गये ।

इसके पश्चात् भगवान् महावीर स्वामी के पाचवे गणा श्री सुधर्मास्वामी ने इस धर्म की अहिंसा का प्रचार कायें अ सिर लिया । पूख आर्यावत में इन्होंने भगवान् का सत्सं जनता के कानों तक पहुँचाया । प्रत्येक धर्मावलम्बियों अहिंसातत्व को ही धर्म का मूल स्वीकार किया । सुधर्मस्वाम

ने भी अपने अनुयायियों की सख्या में आशातीत वृद्धि की। फिर अपने शिष्य जम्बूस्वामी पर धर्म प्रचार का साग भार सौंप कर आप निर्वाण पद का प्राप्त हुए। जम्बूस्वामी ही अंतिम वेवली हुए। उन्होंने भी अहिंसा का बहुत प्रचार किया। इन्हीं के समय में शास्त्रों की पुन रचना हुई और जैनियों की सख्या में करोडा की आवृद्धि हुई। यहाँ तक कि जैनियों के मूल तत्व भारत व्याप्त में हा गये।

जैसा लाभमाय प बालगंगाधर तिलक ने दर्शाया है कि इस इतिहास का यही समय है जबसे वैदिकादि धर्मों में से हिंसा सदा के लिये मिटा पा चुकी, और जैन धर्म का अहिंसा का उज्ज्वल प्रकाश भारत के प्रत्येक धर्म में व्याप्त होकर चमकन लगा।

॥ सिरसा वन्दे महावीरम् ॥



ने भी अपने अनुयायियों की सख्या में आशातीत वृद्धि की। फिर अपने शिष्य जम्बूस्वामी पर धर्म प्रचार का सारा भार सौंप कर आप निर्वाण पद का प्राप्त हुए। जम्बूस्वामी ही अन्तिम वेवली हुए। उन्होंने भी अहिंसा का बहुत प्रचार किया। इन्हीं के समय में शास्त्रा की पुन रचना हुई और जैनियों की सख्या में कराडा की आवृद्धि हुई। यहाँ तक कि जैनियों के मूल तत्व भारत व्याप्त म हो गये।

जैसा लोचमान्य प बालगगाधर तिलक ने दर्शाया है कि बस इतिहास का यही समय है जबसे वैदिकादि धर्मों में से हिंसा सदा के लिये विदा पा चुकी, और जैन धर्म का अहिंसा का उज्ज्वल प्रकाश भारत के प्रत्येक धर्म में व्याप्त होकर चमकने लगा।

॥ सिरसा वन्दे महावीरम् ॥

